के. एन. दारूवाला की

ए समर ऑफ टाइगर्स

का

हिंदी अनुवाद

The Translation of the book : A Summer of Tigers

(एम. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध)

शोध-निर्देशक

डॉ. रणजीत कुमार साहा

सह-शोध-निर्देशक

डॉ. गंगाप्रसाद विमल

शोधार्थी

अनिल कुमार पुष्कर

भारतीय भाषा केंद्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

2005

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre of Indian Languages
School of Language, Literature & Culture Studies
New Delhi-110067, INDIA

Dated: 29/07 / 2005

DECLARATION

I declare, that the work done in this dissertation entitled - **"K.N. DARUWALA KI 'A SUMMER OF TIGERS 'KA HINDI ANUVAD"** (HINDI TRANSLATION OF THE BOOK 'A SUMMER OF TIGERS' WRITTEN BY K.N. DARUWALA)by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University / Institution.

Name: **Anil Kumar Pushkar**
(Research Scholar)

DR. RANJIT KUMAR SAHA
(Supervisor)
CIL/SLL & CS/JNU

DR. GANGA PRASAD VIMAL
(Joint Supervisor)
CIL/SLL & CS/JNU

PROF. MOHD. SHAHID HUSAIN
(Chairperson)
CIL/SLL & CS/JNU

आदरणीय

गुरु

माता-पिता व

बड़े भईया को....

समर्पित

अनुक्रम

भूमिका		i-iv
प्राक्कथन		v-xix
अध्याय एक :	कविता में अनुवाद की समस्या और दारुवाला का काव्य (क) वाह्य और आंतरिक संरचना की समस्या (ख) सांस्कृतिक शब्दों के अनुवाद की समस्या (ग) शैली के अनुवाद की समस्या (घ) बिंबों के अनुवाद की समस्या (ड.) मुहावरे के अनुवाद की समस्या	1-63
अध्याय दो :	केकी. एन. दारुवाला के कविता-संग्रहः ए समर ऑफ टाइगर्स का हिंदी अनुवाद	64-134
अध्याय तीन :	अनूदित हिंदी कविताओं में विनियोजित विशिष्ट संदर्भों पर टिप्पणी	135-144
संदर्भ ग्रंथ सूची		145-148
	आधार ग्रंथ सहायक ग्रंथ अंग्रेजी ग्रंथ शब्द कोश	
संलग्न सामग्री :	"ए समर ऑफ टाईगर्स" मूल अंग्रेजी– केकी. एन. दारुवाला	

भूमिका

अनुवाद, विशेषकर कविता का अनुवाद निर्विवाद रूप से पुनःसृजन के रूप में स्वीकार किया जाता है। कविता के अनुवादक का दायित्व दूसरे अनुवादकों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि कविता एक जटिल सृजन है और सृजन की जटिलता का भाष्यकार वस्तुतः वही सृजनात्मक मस्तिष्क हो सकता है जो भाषा और संस्कृति की गहरी समझ रखता हो। क्योंकि "कोई भी अच्छी साहित्यिक कृति एक आइसबर्ग की तरह होती है। जिसका आठवां भाग ही पानी से ऊपर होता है। अनुवादक की चुनौती उस आठवें भाग का अनुवाद करते समय पाठक को शेष सात भागों का सफल बोध करा देने में निहित है। और जोखिम इस बात में है कि कृति के दृश्य–अदृश्य दोनों ही पक्षों के प्रति पूर्णतया सजग होते हुए भी अनुवादक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो सकता है। कभी–कभी अनुवादक भाषा, विषय आदि की दृष्टि से एकदम ठीक होते हुए भी पाठकों पर मूल कृति जैसा प्रभाव डालने में असमर्थ साबित होता है।"[1]

इस कथन को ध्यान में रखते हुए यदि कविता पर विचार करें तो हमारी दृष्टि में अनायास ही कुछ फलक उभरेंगे। पहली बात तो यह है कि कविता अपने समय, परिवेश, प्रकृति और व्यक्ति चेतना के साथ इतनी गहराई से जुड़ी हुई है कि बिना किसी भटकाव के सीधे–सीधे भाषा और रचनाकार के बीच जो भी संबंध है उसकी सांस्कृतिक, सामाजिक, व्यक्तिगत, दार्शनिक, भौगोलिक और मनोवैज्ञानिक अहमियत से अनुवादक भली–भांति परिचित हो, इस बात से भी वाकिफ हो कि कविता की मूल प्रकृति, जीवन–दृष्टि के निर्धारण, संचालन और संतुलन में ही समायी होती है जिसके द्वारा रचनाकार की व्यापक चिंतन दृष्टि का साक्षात्कार भी होता है।

महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि अनुवाद करते समय अनुवादक इनमें से किन बिंदुओं को अनुवाद में कितनी तवज्जो देता है। इसीलिए एक अनुवादक सही मायने में सृजनात्मक व्यक्तित्व भी होता है। क्योंकि जीवन में जो कुछ भी घट रहा

है अनुवादक की निगाह में कितना पैनापन है यह कविता के अनुवाद से ही समझा जा सकता है। चाहे कोई भी कला हो एक तरह से देखा जाए तो वह किसी संप्रेषण के रूप में अनुवाद ही तो है। जैसे : कविता में पत्ते के खड़कने की आवाज को कवि किस रूप में देखता है और अनुवादक क्या उस संवेदना को उसी रूप में समझ सकता है। अनुवाद की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वह अनुवाद अनुवाद न होकर मूल रचना लगे। इसीलिए कविता का अनुवाद करने के लिए जरूरी है अनुवादक कवि हृदय और बेहतरीन आलोचक भी हो। क्योंकि "काव्योन्मेष का अभिलिखित रूप है कविता। कवि की भीतर की गहराइयों में से उसके अवचेतन, अचेतन की विभिन्न पर्तों को फोड़कर, जो अभिव्यक्ति पाने के लिए मचल रहा होता है वह पूरे का पूरा कभी उसकी कल्पना की, उसके चेतन की पकड़ में नहीं आता, उसकी अभिलिखित कविता में नहीं ढल पाता। बहुत कुछ अनभिव्यक्ति रह जाता है। छूट जाता है और उसका स्थान 'कुछ और' ले लेता है जो चेतना की उपज होती है कविता किसी बाहरी अन्विति की मोहताज नहीं होती। वह न जाने कितने दृष्टि–त्वों और समष्टि सत्यों को एक साथ व्यक्त करने को मचल रही होती है; पर कवि का चेतना उसे अपनी ही तरह से ग्रहण कर, रिकार्ड कर, उसे एक ऊपरी व्यवस्था भी प्रदान कर देता है यह आरोपित अन्विति सतही व्यवस्था बड़ी भ्रामक हो सकती है, मूल कविता को कृत्रिम मोड़ दे सकती है।"[2]

यही वजह है कि एक महान रचना अनुभूति और अनुभवों, संवेदना और ऐंद्रिक बोध तथा किसी भी संस्कृति की भाषा के निचोड़े का निचोड़ है। अनुवादक कविता में मौजूद उस निचोड़ को कितनी संजीदगी से महसूस कर रहा है यह खासियत अनुवादक में हो इसका एक कारण तो यह है कि एक ही कृति के कई अनुवाद होते हैं कई–कई तरह के होते हैं और हर अनुवादक की अपनी कुछ विशेषताएं उसमें निहित होती हैं जैसे कोई 'शिल्प' को महत्वपूर्ण मानता है। कोई शैली या भाव आदि प्रत्येक का अपना निहितार्थ होती है। अमूमन यह समझना चाहिए कि अनुवाद की सबसे बड़ी कसौटी है कि वह अनुवाद मूल रचना की गंध, रूप, रस आदि से उन्मंत हो। इसके लिए अनुवादक को कवि के मूल परिवेश, मनोवृत्ति,

---

1 समकालीन भारतीय अंग्रेजी कहानी, हरीश नारंग, प्रकाशन – साहित्य अकादमी नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1995, पृ.5

2 कविता की मूल मनोवैज्ञानिक समस्या, डा. रणवीर राग्रा, पृ.82

सांस्कृतिक प्रक्रिया की जानकारी होनी चाहिए। उसके द्वारा रचना इतनी बार पढ़ी जाए कि वह स्मृति में बिल्कुल बैठ जाए। दूसरी बात अनुवाद करते समय कविता के संदर्भ में, अनुवादक को यह बात भली भांति मालूम होनी चाहिए कि वह अनुवाद किसके लिए कर रहा है। "काव्य के अनुवाद को पाठक और रचयिता, बल्कि सहृदय और सर्जक दोनों की भूमिका में उतारना होता है। पहले पाठक के रूप में रचना को ग्रहण करना होता है और फिर ग्रहीत रचना की लक्ष्य भाषा में पुनः सर्जना में उसे सही अर्थ में पाठक बनना होता है। सहृदय होना होता है – रचना के प्रति पूर्णतः उन्मुक्त होकर उसके प्रति अपने को पूरी तरह खुला छोड़ कर।"[3]

कविता साहित्य में सबसे अधिक 'कोंप्लिकेटेड' होती है मुमकिन है ऐसी स्थिति में अनुवाद करते समय भाषा के सार्थक ज्ञान के साथ ही साथ कविता, कविता के सही संदर्भ व अर्थ का इल्म् भी मायने रखता है। संदर्भ व अर्थ की बात जहां आती है वहां शब्द निरर्थक हो जाते हैं जैसे – कोई भी अच्छा गीत केवल 'रिद्म' अर्थात् लय से ही हृदय में प्रवेश करता है यदि सुनने वाला संगीत की अच्छी समझ रखता है। "काव्यात्मकता की पहचान मात्र शब्दों में नहीं होती। शब्द भले ही संसर्ग जगाने की क्षमता रखते हैं उनमें गेयात्मकता भी मिलती है किंतु गेयात्मकता भी काव्यात्मकता का अनिवार्य उत्पादन नहीं है। काव्यात्मकता का उत्स उन बिंबों में हो जो वास्तविकता की अनुकृति जैसी कि साहित्य समीक्षक अंनंतकाल से कहते आए हैं काव्य के बिंब जीवन के सादृश्य पर आधारित होते हैं जो अपने स्वभाव से यथार्थ से मुक्त होते हैं।"[4]

चूंकि कथा कुछ स्थितियों, चरित्रों और परिवेश से निर्मित होती है जबकि कविता बिंबों और प्रतीकों से बनती है इसके कारण कविता में अर्थ के अनेक स्तर तथा छवियां मौद होती हैं, कुल मिलाकर कविता का चरित्र संश्लिष्ट होता है। कविता में जितनी अधिक संश्लिष्टता होगी उसका अर्थ और छवियां उतनी ही गहरी और व्यापक होंगी। अनुवादक के संवेदना, संजीदगी और संगीत को पारदर्शी दृष्टि से देख सकने में समर्थ हो।

यह तभी संभव है जब कविता की बाहरी संरचना और आंतरिक संरंचना का ज्ञान अनुवादक में हो। इसके अलावा अनुवाद करते समय अनुवादक का भाषा के साथ किसी तरह का संबंध है? कहने का तात्पर्य है – मूल भाषा में कविता का मिजाज़ तेवर, और शक्सियत कैसी है? दूसरी बात : मूल भाषा की तर्ज़, फितरत, लहजा, अंदाज कैसा है? क्या वह अनुवाद में बरकरार रह सकता है? तीसरी बात; 'मूल भाशा में कविता की मनोवृत्ति जिन तजुर्बों को अपने भीतर संजोए है क्या अनुवाद में वह कायम रह सकता है।

---

3 वही, पृ.80

4 काव्यानुवाद की प्रकृति, ललित बहुगुणा, पृ.9

अनुवाद करते हुए इन विशेषताओं की ओर खास दृष्टि होनी चाहिए। कविता की जटिल संश्लिष्टता के कारण ऐसी तमाम दिक्कतें अनुवाद के समक्ष अक्सर उपस्थित होती हैं। यही नहीं, कविता के अनेक अर्थ भविष्य के गर्भ में छिपे रहते हैं, नए समाज में कविता अर्थ के नए रूपों का साक्षात्कार कराती है। अनुवाद प्रायः ऐसे में जटिल होने के साथ ही साथ कई चुनौतियों से भरा होता है।

कविता में अनुवाद की समस्या और दारुवाला की रचनाओं का अनुवाद करने के दौरान एक रोज कुछ सवाल मेरे हृदय में इस तरह दाखिल हुए कि मेरी मंशा चाहे जो भी रही हो मेरे सम्मुख वे सवाल जो बि तक भीतर कहीं, किसी कोने में वर्षों से दबे थे एकाएक सामने आने लगे और पूछने लगे मुझसे वो सारी बातें जो कभी चेतना से अवचंतन में उतर गई थीं। जिन्हें कभी मैंने सोचा था या नहीं, याद नहीं आता। न तो मैं तैयार ही था उन सवालों के जवाब देने के लिए, ऐसे में शोध–निर्देशक डा. रणजीत साहा से हुई तमाम वार्ताओं ने जवाब का पराक्षेप खोला और मैं सार्थक रह की तरफ मुड़ गया। मैंने गुरुवर के समक्ष सारी परेशानियां बांटी और उनसे सान्निध्य में रहकर प्रतिउत्तर के लिए आग्रही रहा। जिंदगी की तमाम सूरतें उन्होंने कविताओं के आईने में दिखाई। कविता की वास्तविक संवेदना तक पहुंच पाने में यदि मैं कहीं तक भी सफल हुआ हूं तो इसके लिए शोध–निर्देशक का हृदय से शुक्रगुजार हूं।

इनके अतिरिक्त सह-शोध-निर्देशक डा. गंगा प्रसाद विमल जी ने मेरी समझ और जिज्ञासा को जानकर मेरे साथ जिन सवालों की मुश्किलें हल की उनका जिक्र मैं यहां कर रहा हूं – एक कांच के भीतर बंद पड़ा प्रेम/आर–पार दिखाई देती है सारी चीजें/सिवाए प्रेम के। या छूट गई हैं सारी पुरानी लतें/न प्रेम/न युद्ध/न शांति/बची है सिर्फ एक अंतहीन बेचैनी/कहां खो गई खामोशी।

और अंत में मैं मेरे हृदय के सर्वाधिक करीब रहने वाले कुछ अपरिचित मित्रों का आभार व्यक्त करना उचित नहीं बशर्ते जरूरी समझता हूं जिन्होंने मुझे एक आरसे से जानने की कोशिश की, मेरी भली–बुरी बातें सुनीं और मुझे सही दिशा की ओर निरंतर उन्मुख होने दिया।

अनिल कुमार पुष्कर

प्राक्कथन

मेरे शोध का विषय है केकी. एन. दारुवाला के काव्य-संग्रह 'ए समर ऑफ टाइगर्स' का अनुवाद। चूंकि अनुवाद किसी भी संस्कृति में बसी भाषा, साहित्य, कला का प्राणतत्त्व है। जिसके अपने दस्तूर हैं। उसके भीतर ही अनुवाद का वजूद बसता है। अगर ऐसे में बात की जाए कविता के अनुवाद की, तो अनुवाद भले ही किसी इतर संस्कृति की आत्मा को न पा सके मगर कोई भी भाषा अनुवाद के दस्तूर और वुजूद में अपनी 'आंतरिक सौंदर्य' को बनाए रखने की हैसियत रखती है। दरअसल अनुवाद की कुछ 'एब्सट्रेक्ट कन्डीसंस' होती है, जिसमें उसकी रूह रची-बसी है। यह 'एब्सट्रैक्ट कंडीशंस' संगीत के सुरों की तरह है। एक अनुभवी अनुवादक इन 'कंडीशंस' को किसी भी भाषा में परत दर परत खोलकर उसमें लक्ष्य भाषा की संस्कृति की आवाज या सुर पिरोता है, जिससे दोनों भाषाओं की संस्कृति एक नए रूप में निखर कर सामने आती है।

यह सब जरूरी इसलिए है कि दो भाषाओं के लोग कविता और अनुवाद की खूबसूरती और गूंज को हृदय में आत्मसात कर सकें। असल में अनुवाद की पैदाइश कविता की दुनिया में उसकी नाजुकी और नजाकत को 'एब्सट्रेक्ट' आइने के सामने नई-नई सूरतें (दीगर जबां की) दिखाने की दृष्टि हुई है। ताकि दो भिन्न संस्कृतियों के लोग एक ही वक्त में अपनी अनुभूति व्यक्त कर सकें।

अतः पहली बात इस शोध के जरिए मेरा मकसद है दो इतर कौम, भाषा, मजहब की दीवारें तोड़कर एक नीले आकाश के तले हसीन जिंदगी की सुबहो शाम गुजारने की कशिश पैदा करना। कारण यह है कि अनुवाद ही वह माध्यम है जो एक दूसरे को जानने समझने और नजदीक आने की समझ पैदा करता है।

दूसरी बात जिस प्रकार साहित्य, समाज के चिंतन के सारे अंतर्विरोधों को आत्मसात करता है, अंतर्जगत में बौद्धिक क्षणों की रक्षा करता है, जीवन संबंधी अंतर्विरोधों और अराजकता को पहचानने की दृष्टि प्रदान करता है, वह निरंतर 'आत्म' या 'स्वत्व' की गतिविधियों को; जो कभी समाप्त नहीं होती, उन्हें बह जाने देता है, जारी रहता है लगातार एक अनिश्चित 'कभी न खत्म होने वाला सफ़र, इसी प्रकार दारुवाला के साहित्य का यह सफ़र अनुवाद के साथ और बाद भी जारी रहेगा। इस

काव्यानुवाद के जरिए मैंने काव्य का अर्थ खोजने की बजाए कवि की अनुभूति को बनाए रखना उचित समझा है।

दरअसल केकी. एन. दारुवाला की कविताएँ वर्तमान समय में तमाम सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यक्तिगत, ऐतिहासिक उलझनें, बेचैनी, व्यथा और उस त्रासद और आहत संवेदना की मार्मिक तस्वीरें हैं, जिनका केंद्रीय तत्व है – यातना में घुली हुई जिंदगी से उपजी इस सृष्टि के विभिन्न रूपों– पक्षी, प्रकृति, पशु, व्यक्ति आदि में कहीं न कहीं मौजूद है। कविता के तारों पर उंगलियाँ रखते ही अनुभूतियाँ सुनाई पड़ती है, जो लफ़्ज़ों से परे कविता के फलक से दूर अनंत तक तय करती है सफ़र। मुमकिन है के. एन. दारुवाला की ये कविताएँ उन क्षणों की जीवित परंपरा हैं, जो या तो कभी घटे थे या वो इतिहास/अतीत का हिस्सा थे या वर्तमान का हिस्सा हैं। सदियों से चले आ रहे युद्ध, प्रेम और शांति के बीच की टूटन, बिखराव, विखण्डन इन कविताओं में गइराई से मौजूद है। इतिहास से होते हुए भौतिक धरातल तक व्यक्ति के भीतर मौजूद जख़्म, घाव, चोटों के निशान अभी तक कविता के हृदय में अभी भी ताजे जान पड़ते हैं। कवि खोजता है उन्हीं सवालों के जवाब जो कई स्थितियों से बिलकुल वैसी ही सूरत में आज भी हमारे सामने खड़े हैं, कभी रूप बदलकर तो कभी लिबास। लेकिन सवालों के भीतर की पीड़ा और तनाव का प्रवाह जरा भी कम नहीं हुआ। कवि की बेचैनी है कि कब तक ये सवाल यूं ही सामने आते रहेंगे। कवि के पिछले कई कविता संग्रह ऐसे ही सवालों का दस्तावेज है।

ऐसे तमाम सवाल दारुवाला के काव्य में जिरह करते हुए प्रेरित कर रहे हैं कि मैं इन तथ्यों की छानबीन करूं, ताकि इनके भीतर छिपी पीड़ा की अनुभूति से बनावटी, खोखले तंत्र को एहसास हो सके कि कवि का सत्य भोगे हुए यथार्थ का प्रतिबिंब है। इतिहास में इसके नतीजे मौजूद हैं। कवि के नजरिए में ये शिलाखंड ऐतिहासिक पुरुष हैं, जिनके भीतर से निकला है हमारी दुनिया का वर्तमान और भविष्य। किंतु हम कुछ मुखौटों में सिमट कर रह गए हैं। ये मुखौटे हैं – अपराध, हिंसा, अशांति, युद्ध और क्लेश। दुनिया इन्हीं आखों से देख रही है सब कुछ और कवि अपनी आंखों से दुनिया को देखने की बात कह रहा है। उसे बार-बार कविता में इतिहास से वर्तमान तक चक्रवात की तरह दिखाई देती चीजें घूमती हुईं। यह चक्रवात चीते की तरह आहिस्ते-आहिस्ते बढ़ रहा है अपने शिकार की तरफ। दारुवाला की कविताओं में चीते की फूर्ति, संयम और ध्यान पूरी तरह मौजूद है।

कविता एक चिरपरिचित गंध के इर्द-गिर्द लगातार चक्कर काट रही है, जिसके आस-पास कवि का लक्ष्य बसता है। इस लक्ष्य को पाने के लिए कविता लगातार तमाम समस्याओं से जूझ रही है। कविता में जो तनाव, और बेचैनी है वे इन्हीं समस्याओं का परिणाम है।

अनुवाद करने के पूर्व कविता को समझने की कोशिश

हर कविता की अपनी एक लय होती है। लय की अपनी एक तारल्यता या सांद्रता होती है। कविता की इस सांद्रता में स्वरों की कुछ नीरव छवियाँ होती हैं। स्वरों की छवियों में स्पंदित एक अनाहत गूंज होती है। गूंज, जिसे मैं कविता का कलरव कह रहा हूँ। इस कलरव में छिपा होता है– कविता का संगीत। जिसमें अर्थ के अनेक वलय होते हैं। हर तरंग कविता की लय के साथ ही प्रवाहित होती है। हर लहर अर्थ की अनेक लहरों के साथ उन्मत होती है, अर्थ की संभावना के कपाट खोलने फिर अनेक छोरों में विलीन हो जाती है। न जाने किन-किन गहराइयों में समा जाती हैं।

अनुवाद करते हुए इस सृजनात्मक प्रक्रिया के साथ कविता की अकूत गहराइयों में उतरना मेरे लिए बेहद मुश्किल था, क्योंकि हर गहराई एक कल्पित सत्य की संकल्पना मात्र थी। प्रत्येक कल्पित सत्य की पृथक-पृथक सीमाएँ थीं। यही संकल्पना ही कविता के मौन में प्राण-तत्त्व को सींचती हैं। पाठ के दौरान इस अवस्था में कविता कई बार नवोन्मेष से भर गई। इस नवोन्मेषित अर्थ का जुड़ाव कविता के वास्तविक धरातल से किस हद तक संभव है। यह प्रत्येक पाठ करने वाले की संवेदना पर निर्भर करता है। यह संवेदना ही तय करती है कि पाठ करने वाला कविता के साथ किस तरह के संबंधों में जी रहा है।

अनुवाद की इस सृजनात्मक प्रक्रिया के दौरान मेरा ध्यान अनायास ही इन बातों की तरफ झुकता चला गया और मैं कब कविता के भीतर सार्थक अर्थ की तलाश में घुसा, इस बात का अहसास तक नहीं हुआ। इसमें मैं कहाँ तक सफल हुआ यह कह पाना मेरे लिए जरा मुश्किल है। किसी भी अनुवादक के लिए यह एक बड़ी चुनौती है।

इसके साथ ही मेरे लिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा था, वह यह कि दारूवाला की काव्य-भाषा और अनुदित भाषा के बीच मेरा रिश्ता कैसा था। यह महत्वपूर्ण

इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि भाषा अभिव्यक्ति या संप्रेषण का सबसे सर्वोत्तम जरिया ही नहीं है "भाषा एक लैंडस्केप की तरह भी हो सकती है और चौकटे में जुड़े लैंडस्केप के सुंदर चित्र की तरह भी । एक ऐसी पगडंडी का काम भी करती है जो एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक पहुँचकर समाप्त हो जाती है और हाइवे की तरह भी होती है जिसमें से अनेक राजपथ फूटते हैं। झरने की ऐसी पतली धार भी हो सकती है जो पहाड़ से गिरती है और कुछ दूर जाकर धरती में खो जाती है और एक विशाल नदी भी हो सकती है, जिसकी मंजिल समुद्र होती है। यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपनी भाषा का उपयोग सीमित रूप में करना चाहते हैं या बहुविध तरह से।"[1] भाषा मनुष्य की जीवन-शैली की एक जीवित परंपरा है और जीवन के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं – स्वर और मौन। जीवन का स्वर ही मौन में रूपांतरित होता है और जीवन का मौन स्वर में। स्वर और मौन के बीच का संबंध वर्तुलाकार है एकरेखीय या कोणीय नहीं।

कविता का अनुवाद करते हुए मैंने जिन विशेषताओं की ओर विचार करना उचित समझा वे हैं।

लय	स्वर	संगीत
↓	↓	↓
कविता का मर्म	कविता का अस्तित्व	कविता का प्राण-तत्व
↓	↓	↓
संवेदना	भाव	चेतना
↓	↓	↓
(ध्यान)	(धारणा)	(समाधि)

इस प्रकार भाषा पर विचार करते हुए उसकी विशेषता जिस तरह कविता में आनी चाहिए वह है –

स्वर	शब्द	मौन (अनभिव्यक्ति अर्थ)
↓	↓	↓
साधना	तादात्म्य	समाधि

अर्नाल्ड ने इसी स्वरूप को अनुवाद की दृष्टि से जिस प्रकार सुरक्षित रखने पर जोर दिया है वह है – "प्रवाहमयता (repity), सरलता और स्पष्टता (Plainness and directness), शैली और शब्दावली (Style and diction), विचारों का सार (substance of thought), वाक्य -विन्यास (Syntax), उदात्तता (Nobility)"[2]

इन बिंदुओं को ध्यान में रखे बगैर कविता का अनुवाद मात्र शब्दों का अनुवाद होगा कविता को जीवित रखने वाले प्राण-तत्त्व का अनुवाद बगैर इसके कदापि संभव नहीं है।

दारुवाला के काव्य का संक्षिप्त विवरण :

केकी एन. दारुवाला, एसेसमेंट ऐज ए पोइट – डा. आर.ए. सिंह, प्रथम संस्करण, 1992

अंडर ओरियन – केकी एन. दारुवाला, 1970

एप्रिएशन इन अप्रैल – केकी एन. दारुवाला, 1971

क्रॉसिंग ऑफ रिवर – केकी एन. दारुवाला, 1976

द कीपर ऑफ द डेड – केकी एन. दारुवाला, 1982

लैंडस्केप – केकी एन. दारुवाला, 1987

ए समर ऑफ टाइगर्स – केकी एन. दारुवाला, 1995

केकी एन. दारुवाला, एसेसमेंट ऐज ए पोइट

इस पुस्तक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण है, जिसमें भारतीय अंग्रेजी कविता की उत्पत्ति, स्वच्छंतावादी कविता, काव्य-कविता के आधारभूत तत्वों को दर्शाते हुए उस अवधि के प्रमुख कवियों की विशिष्टताओं को रेखांकित किया गया है।

सन् 1828-1850 का समय नई काव्य-परंपरा और उनके उन्नयन और विकास, परंपरा और प्रयोग, अनुकरण और नई पद्धति के बड़े पैमाने से भरा था 1839 के बीच अंग्रेजी कविता में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों के कारण कविता अपने नए दृष्टिकोण को लेकर सामने आई – जिससे इस अवधि को काव्य की इस नवीनता ने यादगार और शोभायमान बना दिया। यह एक महत्वपूर्ण बिंदु था – कविता की रूपरेखा और अंर्तवस्तु में विषय वस्तुओं, शिल्प, भाषा-शैली के विविध आयाम को समझने की दृष्टि से। इस समय के प्रमुख कवियों में तोरू दत्त और काशी प्रसाद घोष ने अपने काव्यात्मक सौंदर्य के जरिए विदेशी आलोचना के क्षेत्र में विशिष्ट ओहदा हासिल किया। आर.ए.सिंह ने भारतीय अंग्रेजी कविता के प्रारंभिक दौर की अंग्रेजी कविता के रंग और आस्वाद्य से उत्प्रेरित बताया है। उनका मानना है कि अंग्रेजी कविता और भारतीय आंग्ल कविता एक-दूसरे के सामानांतर चल रही थीं।

प्रो. गोकाक का कथन है– "इसकी शुरुआत रूमानी कविताओं के प्रभाव से हुई। इसके पश्चात यह विक्टोरियन कविताओं में हो गयी। क्योंकि अंग्रेजी कविताएँ ही विक्टोरियन हो गईं। इसके पश्चात यह पतन की ओर अग्रसर हो गया। कारण था यह दशक ही अंग्रेजी कविताओं के पतन का दशक था। पतन के बाद ये जॉर्जी और हिंदी आंग्ल में तब्दील हो गया, क्योंकि यह हमेशा से राजभक्त रहा है और अंग्रेजी कविता आधुनिक हो गई। हिंदी आंग्ल कविता भी इसी रूप में तब्दील होती चली गई क्योंकि उसके पास कोई और उपाय नहीं था।"[3]

इंडो एँगलियन पोएट के रूप में जो मुख्य कवि थे वे इस प्रकार हैं– हेनरी लेविस विविआन डेरोजिओ, (18-9-1831) और माइकल मधुसूधन (1824-1873).

जिन रचनाकारों ने इंडो-ऐग्लियन पोएट्री को परिपक्व और गूढ़ विषयों से जोड़ा वे हैं – तोरु दत्त, मनमोहन घोष, सरोजनी नायडू, अरबिंदो घोष, हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय, *अन्य कवियों में* के.एन दारुवाला, कमलादास, गौरी देशपांडे, देव के दास, केशव मलिक... आदि

आधुनिकता बोध से भरे हुए विभिन्न विषयों पर रचना करने वाले कवि ऐतिहासिकता बोध को लेकर चले उनमें रोमांटिकता के प्रति नकार का भाव था, नई पद्धति, यथार्थवाद, नई कल्पना, सृजन के विविध स्वरूप, काव्यात्मक सौंदर्य के नए

आयाम, इस समय के कवियों की विशेषता थी। जिसमें अत्यधिक प्रभावोत्पादकता, जीवंतता कूट-कूट कर भरी थी।

नई कविता के प्रमुख कवियों में निजीम एज्किल *(b1924).* इनका पहला संग्रह था – *डॉम मोराकस (1930)* इन्हें पहली बार हाथोर्नडन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इनका पहला संग्रह *'ए बिग्निग' (1857)* में प्रकाशित हुआ। अन्य कवियों मे *आदिल जुस्सवाला (1940), ए.के. रामानुजन (1929), आर पार्थसारथी (1934), गिवी पटेल (1940), अरबिंद किम मेहरोत्रा (1947) प्रतीश नंदी (1947).*

सातवें दशक के जिन कवियों को लेखक ने संग्रहीत किया – वे इस प्रकार हैं – *शिव कुमार, जयंता महापात्रा, अरुन कलत्कर, कमला दास, मोनिका वर्मा, केकी एन. दारुवाला, ओ पी भटनागर।*

इसके पश्चात लेखक ने केकी एन. दारुवाला के समस्त संग्रहों को दर्शाते हुए उनकी कुछ विशिष्टताओं का उल्लेख किया। भूमिका के पश्चात लेखक का दूसरा अध्याय है *'द इंडियन एथोस एंड अदर थीम्स* इसके अंतर्गत *केकी एन. दारुवाला* के समस्त काव्य-संग्रहों की आलोचना को अपने अध्ययन का केंद्र बनाया। और इस पर विस्तृत चर्चा की है।

अंतिम अध्याय है – *'क्राफ्ट मैन एंड टेक्निकल'* इसके के अंतर्गत सातवें दशक के कवियों की बदलती दृष्टि और परिकल्पना के साथ भाषा, शिल्प, शैली, संवेदना, को बखूबी गंभीरतापूर्वक दर्शाया है तथा इन कवियों की विशिष्टताओं की चर्चा पुराने कवियों से करते हुए नवीन पद्धति, प्रयोग, को अपने चिंतन के केंद्र में रखा है।

अंडर ओरियन – केकी एन. दारुवाला, 1970

इस संग्रह में कुल 33 कविताएँ हैं, जो अपने समय, परिवेश, घटनाओं, यथार्थ को लेकर ऐसे बिंब विधान प्रस्तुत करती हैं, जिनका सरोकार सीधे व्यक्ति-चेतना से है। इसके अंतर्गत सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, जैसे तमाम विषय कविता के भीतर घुसकर कवि के मनोद्वेग, विचार, कल्पना, संवेदना को उभारते हैं। कवि समाज में जिन परेशानियों को देख रहा है लोगों के जीवन में हस्तक्षेप करते हुए जिन घटनाओं, प्रवृत्तियों, कार्य-व्यापार के जीवन की नैतिकता का हनन किया है, वे सभी संकल्पनाएँ कविता के रूप में हमारे सामने मौजूद हैं– ऐसे ही एक कविता है

'कर्फ्यू – इन ए रॉयट टर्न सिटी' जो सांप्रदायिक प्रचंडता को एक बड़ी आकृति के रूप में प्रस्तुत करती है। कवि के मनस में यह आकृति निर्मित हो रही है– शहरीकरण के बढ़ते दायरे के कारण निरंकुशता, संबंधों का बिखराव, अपराध, हिंसा, कुकृत्य, आदि विकृतियाँ फैल रही है। व्यवस्था के साए सींकचों को तोड़कर लोग स्वार्थ, लोलुप हुए सामाजिक विकास को अवरुद्ध करने लगे हैं । यही नहीं इसमें शामिल है – मृत्यु, महामारी, अव्यवस्था, अशांति, लूट, हत्या, कुकर्म आदि। इस कविता में 'ब्लैक' शब्द अपने भीतर शहर की तमाम काली मीनारों को समेटे हुए हैं। जो वीभत्स रंगों से वर्तमान परिदृश्य को कुचल रहा है।

अन्य कविताओं में यही भ्रष्टाचार का कुचक्र और महामारियों का प्रसार इस कदर अपनी जिह्वा खोले तमाम लोगों के जीवन को निगलता जा रहा है। ऐसी कविताएँ हैं 'शोल्डर राउंड एक ओर्ब, मशल्स स्मूथ ऐज मेमोरी लाइक ए क्रेन आर्म' रिवर आदि। कुछ कविताएँ नाटकीयता, संवादों के कटाक्ष, अद्‌भुत कल्पना; उपमाओं से भरी भौतिक जीवन के कटु सत्यों को धारण किए समय की त्रासदी का चित्रण करती है। 'यू वर फर्स्ट में प्रेम के यथार्थ का अद्‌भुत चित्रण है।

एप्रिएशन इन अप्रैल – केकी एन. दारुवाला, 1971

इस संग्रह की विशेषता है महान और यादगार ऐतिहासिक व्यक्तियों के जरिए मानवीय सरोकारों की प्रस्तुति। इसके अतिरिक्त जिन विषयों का मिश्रण है – प्रेम, सेक्स, राजनैतिक, धार्मिक, क्रिया-व्यापार। इस संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण कविताएँ हैं – 'पिलग्रीमेज द पीपल, फूड एंड वड्‌र्स, वड्‌र्स एंड फूड, इवैंक्लिकल इव' यह कविताएँ अपने भीतर तमाम विषयों को समेटे हुए हैं। जीवन की व्यक्तिगत समस्याओं से संघर्ष प्रस्तुत करती इन कविताओं में ग्राम, संस्कृति, अनैतिकता, आत्मदाह, आदि विषयों को लेकर मार्मिक चित्र कैनवस पर खींचा गया है। 'द पीपुल' कविता में धार्मिक विश्वास, पाखंड को लेकर कवि ने प्रश्नचिह्न खड़े किए हैं: 'द हेल्पर ऐट द ताज' कविता में कवि ने संस्कृति और सभ्यता को संगमरमर के पत्थरों की भाँति दर्शाया है। यह कविता मानवीय कुंठा, दया, नैतिक मूल्यों, को रेखांकित करते हुए विषय के भीतर विमर्श करती है। 'द राइटर एब्रौड में कवि के द्वारा राष्ट्रीयता की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करते हुए विदेशी लेखकों द्वारा भारत की जो तस्वीर खींची गई उसके प्रति नकार और विद्रोह का भाव है। 'स्वोर्ड एंड एबाइस' कविता अपने परिवर्तित रूप और अंतर्वस्तु के कारण संग्रह की समस्त कविताओं से बिल्कुल अलग

दिखाई पड़ती है। जो इलियट का अनुकरण करते हुए प्रेम के रंगों को बिखेरती है इस कविता का सौंदर्य और आकर्षक प्रत्येक पंक्ति में बसा है।

क्रॉसिंग ऑफ रिवर – केकी एन. दारुवाला, 1976

इस संग्रह की शीर्षक कविता को तीन भागों में बांटा गया है। 'द वाटरफ्रंट', क्रॉसिंग आफ रिवर्स' और इन माई फादर्स हाउस' संग्रह पारंपरिक निष्ठा और विश्वास को लेकर तमाम विमर्शों से भरा है।

पहला भाग गंगा के विविध स्वरूप और मनोवृत्ति को दर्शाता है। दूसरे भाग में हिंदू शास्त्रोक्त को नदी के साथ संयुक्त कर चिंतन किया गया है। तीसरे भाग में शास्त्रोक्त के भीतर मौजूद प्रेम-भावना की चर्चा की गई है। चौथा भाग अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसमें व्यक्ति की अंधश्रद्धा वर्णित है।

'द बूट राइड अलांग द गंगा' कवि संबोधन के समय मृत्यु, विकार, नदी के दूसरे छोर पर फैले हुए दिखा रहा है। ऐसे में एक भी व्यक्ति सुखी व आनंदित नहीं महसूस कर रहा है। कविता के आखिरी बिंदु पर कवि को संदेह होता है कि वह शहर को कहाँ ले जाए। इसलिए वह गंगा को कभी माता, पुत्री और कभी ब्याहता के रूप में प्रस्तुत करते हुए कविता को प्राकृतिक मोड़ पर खत्म करता है।

'बेल टॉवर' में कवि ने नदी शिकारे अल्लाह और मृत्यु को अदृश्य रूप में ईश्वरीय शहर का भाग कहकर प्रस्तुत किया है। कवि का मानना है कि इनके बगैर कोई भी नहीं सोच सकता है कि शहर को कैसे बनाए रखा जा सकता है। 'विग्निटी-1' में कवि ने दिन के खंडित होने का दृश्य प्रस्तुत किया है, लेकिन कवि महसूस करता है कि गंगा अपने उसी रूप में निरंतर बह रही है जहाँ सूर्य के उदय के साथ ही जीवन का आरंभ होता है और कवि हिंदू शास्त्रोक्त बुद्धिजीवियों को कुष्ठरोगी, भिखारी, बौने के रूप में प्रस्तुत करते हुए जीवन की दिनचर्या शुरु करता है। इसी प्रकार ' विग्निटी -II' में कवि ने हिंदू शास्त्रोक्त के कुछ नियमों 'पिंडदान, 'पंचतीर्थ' 'गंगोत्री' आदि का वर्णन करते हुए इन सभी को बेहूदा और बकवास बताया है।

'विग्निटी-III' में कवि ने बनारस शहर को मृत करार दिया है जो मृत्यु का, क्षयग्रस्त, कंजूस प्रेम से विरक्त, अनैतिक आदि का प्रतीक है अविराम, छद्महीन,

बदसूरत, कुकृत्य यह रूपरेखा है बनारस शहर की। दारुवाला ने इन चीजों को वास्तव में हिंदू शास्त्रोक्त को कुंठाग्रस्त, भ्रामक, अविश्वसनीय और अनैतिक कहा है।

इस संग्रह के दूसरे खण्ड में 'जल-प्रदूषण' को अंतर्राष्ट्रीय समस्या का लिबास पहनाकर प्रस्तुत किया है। तीसरे खण्ड में प्रेम भावना को 'रिचुअल्स' के रूप में दिखाया गया है। 'इन माई फादर्स हाउस' को चार भागों में बांटा गया है – 'डेथ ऑफ ए बर्ड', 'द फाइटिंग ऑफ ईगल्स', 'हरंग' और 'इन माई फादर्स हाउस' । इसमें चिड़िया को प्राचीन पद्धति से मारने का दृश्य, बाजों का मुंह, दुःख, दुर्भाग्य, भयकारी प्रतीक तथा कवि अपने पिता की समाधिस्थान के बारे में एक-एक चित्र बारीकी से प्रस्तुत करता है।

विंटर पोयम्स – केकी एन. दारुवाला, 1980

इस संग्रह में (1974-1979) तक की कविताएँ संग्रहित हैं। यह ग्यारह कविताओं का संग्रह है। लेखक ने जिन विषय-वस्तुओं को चुना वे इस प्रकार हैं – भूख, मृत्यु, रहस्य, भ्रष्टाचार, प्रेमरहित जीवन का संघर्ष आदि। विंटर शब्द अधेड़ और निजता की जीर्णता को दिर्शाता है। यह शीर्षक कविता के रूप में सात विभागों में दर्ज है। विंटर शब्द प्रतीक है – जीवन और चेतन तत्व के अभाव का। दूसरे खंड में अधेड़ व्यक्ति के जीवन को भीतर की हताशा, निराशा और खूबसूरती से पेश किया गया है।

तीसरे खण्ड में अधेड़ व्यक्ति के लाचार, असहायपने को तरतीब से रखा गया है जहाँ बीता हुआ समय प्रेतात्मा के रूप में व्यक्ति का पीछा करता है । और अधेड़ व्यक्ति अपने वर्तमान को अतीत के साथ तुलना करते हुए कितना असहाय महसूस करता है। यह खण्ड अत्यधिक मार्मिक बन पड़ा है।

चौथा खंड व्यक्ति के ठीक मृत्यु के पूर्व के दृश्य का अवलोकन हैं। इस अवस्था में मनुष्य अचेत अवस्था में पड़ा सिर्फ अतीत और वर्तमान के बीच सारी चीजें झिलमिलाते हुए अपने इर्द-गिर्द महसूस करता है। पांचवें खण्ड में व्यक्ति के समीप मृत्यु के आने की प्रतीक्षा के दृश्य हैं। यहाँ जीवन की समस्त चीजें, नीरस, निष्ठुर हो चुकी होती हैं। आखिरकार व्यक्ति की मरणोपरांत उसके मिट्टी में मिलने के समय का चित्रण सुंदर ढंग से किया गया है। सातवें खंड में कवि अधेड़ व्यक्ति में जीवन की लालसा को खोजता है, जहाँ पर ठहरकर व्यक्ति प्रेम से शून्य और नितांत अकेला

हो चुका है। कवि को ऐसा इसलिए लगता है, क्योंकि आगे दृश्य अत्यधिक दर्द से भरा है।

'इंक्वेस्ट' कविता दारुवाला की चिंताओं से भरी है, जो तीन खंडों में विभाजित है। तीनों खंडों में जनसंख्या वृद्धि, भयानक रोग, पर्यावरण प्रदूषण का चित्रण गंभीरता पूर्वक किया गया है।

इसी प्रकार अन्य कविताएँ – 'हंगर-74', 'कैरीज द प्रोफेसर कोंडोल्स', 'आइंस्टीन इक्सप्लेन्स टू गॉड द इण्ड ऐट द वर्ल्ड', 'बाम्बे प्रेयर्स' आदि कविताएँ जीवन के तमाम सत्यों को उद्‌घाटित करने में सफल हुई हैं।

द कीपर ऑफ द डेड – केकी एन. दारुवाला, 1982

यह संस्करण (1984) में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। शीर्षक कविता की नौ भागों में लेखक ने प्रस्तुत किया है। ये नौ विभाग हैं – 'हॉक', 'द किंग स्पीक्स टू द स्क्राइब', 'पेस्टीलेंस इन नाइन्टींलर सेंचुरी कलकत्ता', 'द रिवोल्युशनरी', 'यू स्लीपिंग पास्ट', 'द मिस्ट्रेस', 'कॉमेट एंड ड्रीम', 'कोहौलिक', और 'मेहर अली द कीपर ऑफ द डेड।

इस संग्रह में जिन विषयों को मुख्य रूप से लिया गया है – लूटमार, कुरूपता, महामारी, धार्मिक विधि-विधान, युद्ध और शांति आदि।

'हॉक' प्रतीक है विद्रोह का। यह कविता स्वार्थ के उत्पन्न होने से अस्थिरता और कमजोरी को प्रस्तुत करती है, जिसमें अत्याचार, स्वार्थ आदि निर्दयता का विरोध किया गया है। बाज पर्यावरण प्रदूषण को जमीं पर देख रहा है, इस से उसे नफरत है। इसके पश्चात लेखक शिक्षा भ्रष्टाचार और निर्दयता से गुस्सा है। किंतु वह कुछ न कर पाने की विवशता से भरा सब कुछ का हनन होते देख रहा है। इसके बाद का दृश्य है – पूरे संसार में अराजकता के शासन का खत्म होना। खासकर हिंदुस्तान में। यहाँ लेखक जूझता है, इन तमाम दिक्कतों से। कविता में यह सारे बिंब एक बेहतरीन करीनेदार तरीके से पेश किए गए हैं। इसके बाद के भागों में अशोक के अंतिम युद्ध के पश्चात उसकी मानसिक दशा का वर्णन, मृत्यु के दंश के रूप में महामारी, हुकूमत के जुल्मों से मारे गए क्रांतिकारी, कवि का अतीत, अंग्रेजी का बदसूरत चेहरा, आदि विषयों को अत्यधिक सूक्ष्मतम ढंग से कविता में पिरोया गया है।

'द अनरेस्ट ऑफ डिजायर' कविता में दांपत्य जीवन की अनुभूतियों और अनुभवों को नौ भागों में प्रस्तुत किया गया है। इन भागों के अंतर्गत शारीरिक प्रेम और भय, तत्पश्चात सुखद जीवन के क्षण, आदि को संजोया है। इसके बाद की कविताएँ विभिन्न विषयों पर लिखी गई हैं।

लैंडस्केप – केकी एन. दारुवाला, 1987

इस संग्रह में प्रकृति और मनुष्य के विविध स्वरूप, मनोदशा का वर्णन किया गया है। 'मांडवा' कविता में कवि 'कोस्टल एरिया' की यात्रा का विवरण विस्तारपूर्वक करता है। इसमें सूर्य, समुद्र, मछली पकड़ने का जाल, गर्मी आदि बिंबों के जरिए कविता को गहराई में ले जाने की सफल कोशिश की गई है। अन्य कविताएँ – 'गुल्जामन्ज़ सन', 'फिश आर स्प्रेड बाई नाइट', 'फ़्लैश लाइट – स्टैब', रिक्विंग फॉर ए हॉक', 'माइग्रेशन', 'रूमिना हॉन'ज ऐट वर्जिंग'

आदि में शरणार्थी, खोए हुए बच्चे, मछुवारे, प्रचण्डता, दैवीय स्थानों का दृश्य ऋतु वर्णन व अन्य विषयों को बखूबी इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि कविता में यह सब कुछ बिल्कुल सजीव जान पड़ता है। संवेदना और इंद्रिय-बोध को बड़ी बारीकी से पिरोया गया है ताकि कविता में कहीं भी रिक्तता, अभाव, दुरूहता उबापन जगह नहीं बना सके।

ए समर ऑफ टाइगर्स – केकी एन. दारुवाला, 1995

इस संग्रह में कुल 35 कविताएँ हैं। कवि ने संग्रह के शीर्षक में 'टाइगर्स' शब्द का प्रयोग किया है वह पूरे संग्रह की पहचान अनेक स्तरों पर अन्य कविता संग्रहों से हटकर करता है। यह मनुष्य और उसके जीवन का प्रतीक है। 'टाइगर' शब्द शारीरिक शक्ति को दर्शाता है, जिसका संबंध मनुष्य सामर्थ्यता से असमर्थ्यता तक यानि अवशेष से मृत्यु तक जुड़ता है और संदर्भ समय व अंतराल से। किसी भी तरह की शारीरिक शक्ति धीरे-धीरे न्यूनतम की तरफ बढ़ती है, किंतु हृदय में स्थित संवेदना का शारीरिक ह्रास से कोई संबंध नहीं है। हृदय में संवेदना का स्थान सदा के लिए गतिशील बना रहता है। संवेदना की कोई बंदिश नहीं होती है। यह समय और अंतराल से परे है। यह विशेषता मनुष्य हृदय की खास विशेषता है। अपने जीवन के अंतिम क्षण तक मनुष्य हृदय में संवेदना की गतिशीलता के साथ-साथ उसका

प्रकटीकरण मनुष्य जीवन में जीवनी-शक्ति ला देती है। जिस हृदय में संप्रेषणीयता का अभाव है वे सदा मृतजीवी होता है।

आत्मशक्ति सबसे बड़ी शक्ति होती है। शारीरिक शक्ति सीमित होती है जबकि आत्मशक्ति असीमित। अतः वह व्यक्ति अधिक बलशाली होता है, जिसके हृदय में आत्मशक्ति का वास है। दारुवाला के काव्य में यह आत्मशक्ति कई रूपों में उभरती है जैसे 'लेटर्स टू पाल्बो' कविता में अभिजात्य वर्ग के पतन को आधार बनाकर कवि नेरूदा से तमाम संवाद करता है जो मनुष्य की संवेदनात्मक धरातल से गहरे जुड़े हुए हैं।

ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर लिखी गई रचनाओं में अनैतिकता, विखंडन, युद्ध अव्यवस्था अपराध, हिंसा, कुकृत्य आदि विषयों को आधार बनाया गया है और गहरी चिंता व्यक्त की गई है जैसे ब्रूटस और बॉरजेस, इतिहास, मोहम्मद अली पास, अखण्ड असफाहन पर, दो प्रतिमाओं का पयाम, आदि कविताओं में भयानक अस्थिरता, अशांति, तनाव मौजूद है। यही स्वर और उसकी प्रतिध्वनि दारुवाला के अन्य कविता संग्रह 'अंडर ओरिआन' की कविता कर्फ्यू – इन ए रॉयट टर्न सिटी', में भी दिखाई देती है। इतिहास में मौजूद क्रूरता और सांप्रदायिकता को कवि ने एक नई दृष्टि से देखने की कोशिश की है, जिसके पटाक्षेप में जीवन का परिष्कार है। ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं को लेकर एप्रीशन इन अप्रैल, संग्रह में भी तमाम तरह की आशंकाओं को दिखाया गया है।

दारुवाला की कविताएँ एक ओर ऐतिहासिक चिंताओं से भरी हैं वहीं दूसरी ओर सामाजिक समस्याओं का उन्मूलन करने की दृढ़ता और निष्ठा ने समाज के उग्र, अराजक, अहिंसक, अपराधिक प्रवृत्तियों के विरुद्ध कवि को उकसाया। ऐसी कविताओं में द लास्ट व्हैल, द ग्लास ब्लोअर, रैट फेल, डिस्ट्रिक्ट लॉ कोर्ट आदि हैं, जिनमें सामाजिक विद्रूपता, विघटन, अव्यवस्था, अनाचार की झलक मिलती है। कवि ने इन्हीं सामाजिक समस्याओं को कई अन्य स्तरों पर अंडर ओरियान संग्रह में शोल्डर राउड ऐज ओआरबी, मशल्स स्मूथ ऐज रिवर स्टोन, मेमोरी लाइक ए क्रेन आर्म आदि में महसूस किया है। जहाँ एक ओर रूढ़ि की खिलाफत और आडंबर के प्रति आक्रोश कविताओं में मौजूद है वहीं नई सामाजिक संकल्पना की चाह भी मिलती है। क्रासिंग ऑफ रिवर' संग्रह में 'द बोट राइड द गमन' में तीव्र स्वर उभरते हैं वहीं बेचैनी

'कार्गो' 'इनवोकिंग द गौडीज', 'द ग्लास ब्लोवर' आदि कविताओं में मिलता है। कवि इन परेशानियों से विमर्श करता है तथा एक ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचना चाहता है, जहाँ इसकी मानसिक और सामाजिक विकास में अवरूद्धता के विरुद्ध खड़ा है।

कवि ने व्यक्तिगत संबंधों पर एक निगाह डाली जो रोजमर्रा की जिंदगी में महत्वपूर्ण है इन संबंधों को कवि खुदगर्जी नहीं कहता। वो इसे नैसर्गिक रूप में स्वीकार करने की चेष्टा से भरा है। 'डिस्परेट पीसेज', 'इन द फूटस्टेप ऑफ द संस्कृत पोएट्स', 'इस्नोमिया', 'अमेरिकन पोएट्री वर्कशॉप' रिटर्निंग फ्राम द गल्फ आदि कविताओं में सबंधों के बिखराव, टूटन, रिक्तता, अकेलापन को देखा जा सकता है। यही प्रतिच्छाया कवि के अन्य संग्रह 'एप्रीएशन इन अप्रैल' में मौजूद कविता 'स्वोर्ड एंड एबाइस', 'विंटर व्यूज' शीर्षक कविता 'द कीपर ऑफ द डेड' संग्रह में 'द अनरेस्ट ऑफ डिज़ायर' कविता में देखा जा सकता है, जो व्यक्तिगत संबंधों की गहराई से पड़ताल करती हुई दिखाई देती है। ये कविताएँ प्रेम, को नई दृष्टि प्रदान करती हैं तथा भय तथा संत्रास से पीड़ित निजी संबंधों में दरार के कारणों को दर्शाती हैं।

दारूवाला ने राजनैतिक पहलुओं को भी कविता में स्थान दिया है। किसी भी देश की राजनीति उसके विधान का निर्धारण करती है और विकास का मार्ग तलाशती है। कवि की यह धारणा राजनैतिक कुत्सित संकुचन और राष्ट्रीय चेतना को भुलाकर व्यक्तिगत स्वार्थों से भरे राजनीतिज्ञों को कवि दिशा देना चाहता है। यह कोशिश कई स्तरों पर चलती है। ये सारे प्रारूप विभिन्न कविताओं में भिन्न-भिन्न धरातलों पर देखे जा सकते हैं। 'लेटर्स टू पाब्लो' से कवि पाब्लो नेरूदा से विमर्श के दौरान कई राजनैतिक घटनाओं पर चर्चा करता है और नेरूदा को प्रश्नों को कटघरों में खड़ा किए सवाल पूछता है। बार-बार अपने देश की तरफ नेरूदा को सोचने की बात करता है। आखिर क्यों है कवि के भीतर देश की ऐसी तस्वीर, जिसका फ्रेम दरक गया है और तस्वीर धुंधली हो गई है। चेस, जैसलमेर प्रोफेजीज, चाइल्डहुड पोएम, द पोजीडोनियंस आदि कविताएँ राजनीतिक विघटन की ओर संकेत करती हैं।

इसके अतिरिक्त कवि ने तमाम विचारों को विभिन्न समस्याओं की ओर मोड़ा है। ऐसी कविताओं में विकार, रोग, आंतरिक पीड़ा, जीवन के तमाम दृष्टांत, जिनमें छिपा है सत्य का प्रक्षेपण, जिसे पाने के लिए कवि निरंतर संघर्षरत् है। इस संघर्ष की

सीमाएँ और विस्तार कविता में निहित है जिसे वह निर्वैयक्तिक होकर कविताओं के जरिए हमारे सामने रखता है।

---

1 संवादः भाषा/ का मनुष्य से रिश्ता, गिरिराज किशोर, पल–प्रतिपल/जनवरी–मार्च 1997

2 अनुवादक परिचयः मैथ्यू अर्नाल्ड, सुरेश सिंहल, अनुवाद पत्रिका, अंक, वर्ष, पृ.146

3 Prof. Gokak's view: "It started as a Romantic Poetry influences, It becomes Victorian because English Romantic becomes Victorian. It decided to go through a period of 'Decadence' because the nineties were a period of 'Decadence' in English poetry. After 'Decadence' came Georgianism and Indo-Anglian poetry, loyal as always, suddenly becomes Georgian. English poetry went modernist. Indo-Anglian poetry had no alternative but to do the same."

अध्याय एक

कविता में अनुवाद की समस्या और दारुवाला का काव्य

साहित्य में अनुवाद वाकई में अनेक मुश्किलों से भरा है। ये मुश्किलें जुड़ी हैं, रचनात्मक लालित्य से। अनुवाद में वह कौन सा तत्व है जिसके जरिए रचना की इस विशेषता को बरकरार रखा जा सकता है जो मूल कृति के भीतर पैवस्त है। मूल कृति से अनुवाद का कौशल यकीनन वैसा ही है जैसे – एक कुशल कारीगर के जरिए जीवंत मूर्ति का निर्मिति। कारीगर जितनी सूक्ष्मता से कृति को रचता है उसमें उतनी ही 'सार्पनेस' आती है। अनुवाद के दौरान कुशल अनुवादक कृति के इस लजीज तत्व को जिस सहूलियत और सलीके से तराश कर उभारता है कृति की नजाकत और नफासत उतनी ही बढ़ जाती है। मुमकिन है ऐसी स्थिति में अनुवादक बेतकल्लुफी और दिलचस्पी से कृति के अंतर्जगत में उतरता है। जिस वक्त वह कृति की सीरत को उभार रहा होता है, इस बात से भी इत्तफाक रखता है कि मूल कृति की नाजुकी, संजीदगी और संगीत जाया न हो जाए।

बच्चन का विचार है कि "अनुवाद – मेरा मतलब सफल अनुवाद से है – जिसे दूसरे शब्दों में कविता का प्रतिरूप तैयार करना कहेंगे – तभी संभव हो सकता है – जब अनुवादक कविता के साथ किसी तरह की आत्मीयता का अथवा अनुकूलता का अनुभव करे। ऐसी सहानुभूति (सह+अनुभूति) के अभाव में ये सब समस्याएँ, यहाँ तक कि सबद्ध भाषा की जानकारी भी वह किसी अनुवाद को प्रस्तुत करने की क्षमता नहीं दे सकती। अनुवाद की चरम सफलता यही मानी जा सकती है कि वह अनुवादक मौलिक प्रतीत हो या न हो उसी अनुपात में उसे सफल या असफल कहा जा सकता है।"[1]

साहित्य में चाहे किसी भी विधा का अनुवाद हो, अनुवाद कहते ही हमारे जेहन में जो पहली तस्वीर उभरती है वह है – कि अनुवाद की जरूरत क्या है? जाहिर है हर एक भाषा की अपनी संस्कृति होती है और हर संस्कृति की अपनी भाषा होती है। जिसके साथ उस संस्कृति में बसे तबके का ख़्याल, और जज़्बात शामिल होते हैं हर एक भाषा की पैदाइश किसी भी मुल्क की अपनी संस्कृति में ही

होती है। हर भाषा की कई तहें होती हैं। जिसके कारण एक ही शब्द के कई मायने उसके अंतस्तल में ही छिपे होते हैं। चाहे कोई भी भाषा हो हर एक का दुनियावी रहस्यों को देखने का एक खास अंदाज होता है। उसकी अपनी एक पृथक तहजीब, रस्म-रिवाज, और इल्म है। यही वजह है कि अनुवाद के दौरान एक भाषा में वही इल्म, तहजीब, संस्कृति, दूसरी भाषा में हू-ब-हू नहीं आ सकता।

बावजूद इसके अनुवाद मूल कृति की जीवन-ऊर्जा का रूपांतरण है। जीवन-ऊर्जा जो प्रकृति में, जीव में, पदार्थ में प्रवाहित हो रही है। जब भी किसी रचना का रूपांतरण होता है तो कितनी अजीब बात है – अनुवाद में – किसी भी भाषा, संस्कृति के साहित्य कला, संगीत के रूप और अंर्तवस्तु का तकरीबन काफी हिस्सा बदल चुका होता है लेकिन अनुवाद की जो खासियत है – कि किसी भी कृति का केंद्रीय तत्व नहीं बदलता। वह लक्ष्य संस्कृति, भाषा में तब्दील होकर उसी लय, लहजे, प्रवाह, अंदाज में अपना अस्तित्व ग्रहण करता है। इस तरह से मूल कृति लक्ष्य भाषा में पुनःसृजित होती है।

दरअसल अनुवाद का रिश्ता किसी भाषा के एक निश्चित भाव या संवेदना से नहीं है एक दशा या अवस्था वह है जहाँ सब कुछ ठहरा हुआ है, रूका है, स्थिर है। इसीलिए कह रहा हूँ अनुवाद एक सांस्कृतिक उत्सव है। जिसमें चित्त या मनोवृत्ति की एक दशा, एक जीवंत दशा में शब्द विलीन होते हैं। अनुवाद है – संस्कृति का रागात्मक संबंध। यकीनन अनुवाद किसी भी भाषा, संस्कृति, जीवन-शैली के नएपने में प्रवेश करने की एक विधि है। जहाँ समग्रता में जीना पड़ता है। शब्द चाहे किसी भी भाषा का हो, उसमें एक जीवंत अर्थ छिपा होता है। "किसी भी भाषा के महान काव्य में शब्द अर्थ, गिरां और अर्थ जल और वीचि के समान समृद्ध होते हैं। अनुवादक को अर्थ लेना पड़ता है, शब्द छोड़ना पड़ता है और अर्थ को दूसरी भाषा के शब्दों के साथ जोड़ना पड़ता है। अर्थ से उतना ही अर्थ नहीं जितना स्कूली बच्चों को बताया जाता है मेरे लिए उसमें रस भी सम्मिलित है।"[2] अनुवाद के दौरान शब्द बीज रूप में एक निश्चित समय तक रहता है और अर्थ अंकुरण या स्फुटरण के रूप में शब्द के भीतर प्रजनन-क्रिया कर रहा होता है। इस स्फुटरण में जो प्राण तत्व के रूप में प्रवाहित हो रहा है वह है – रस। रस शब्द के भीतर

गहन, सघन ऐंद्रिक-बोध की सरल संरचना में जीता है यह एक जटिल संश्लिष्टता का तल है। इसी के भीतर ही किसी भी भाषा की संस्कृति का प्रवाह, सौंदर्य, गति, प्रतिबिंबित है।

अनुवाद में जो शब्द का रस है वो किसी भी भाषा, संस्कृति, सभ्यता, शिल्प, जीवन-शैली का रस है। मसलन – 'आमी एक जा-जा बोर' बहुत मशहूर नगमा है भूपेन्द्र हजारिका का। 'जा-जा बोर' का सही अनुवाद मुसाफिर भी नहीं, बंजारा भी नहीं, आवारा भी नहीं। लेकिन सबसे करीब आवारा है, बिना मंजिल के घूमते रहना, चलते रहना, इस ज़मीन पर, इस पूरी ज़मीन पर। जिसे वह अपना घर समझता है और घर – जो कहीं नहीं है इसे क्या कहेंगे? आवारा कहीं का या आवारा कहीं का नहीं।

'जा-जा बोर' में आसामी संस्कृति का, जीवन का, सभ्यता और सामाजिक का रस है। अनुवाद के दौरान अर्थ की तह तक पहुँचना ठीक-ठीक मुमकिन नहीं है। इस दशा में साधारणीकरण के जरिए शब्द के साथ तादात्मय स्थापित कर उसके अर्थ की गहराई को पाया जा सकता है तभी शब्द में निहित अर्थ और रस का निचोड़ लक्ष्य भाषा में लाया जा सकेगा। इसीलिए "सफल अनुवादक वही होता है जो अपनी दृष्टि भावों पर रखता है। शाब्दिक अनुवाद न तो शुद्ध होता है, न सुंदर। भाव जब भाषा, माध्यम को छोड़कर दूसरी भाषा-माध्यम से मूर्त होना चाहेगा तो उसे अपने अनुरूप उद्‌बोधन और अभिव्यंजक शब्द-राशि संजोने की स्वतंत्रता देनी होगी। यहीं पर अनुवाद मौलिक सृजन होता है या मौलिक सृजन की कोटि में आ जाता है।"[3]

अनुवाद की खासियत यही है कि उसमें एक उम्मीद, ऑप्टीविज़्म (आशा) कभी नहीं छूटती। अनुवाद एक शब्द के समानांतर एक अन्य भाषा में सामानंतर शब्द भरता है। किंतु समानांतर शब्द के साथ अस्तित्व के साथ, मूल भाषा के शब्द का साया साथ रहता है और लक्ष्य भाषा का स्वतंत्र अस्तित्व मूल शब्द का भाव या अर्थ के रस को अपने में समाहित कर लेता है। इस दशा में अनुवाद की संजीदगी, नाजुकी, संगीत ही उसके भीतर छिपे अर्थ को स्पंदित करती है।

"अनुवादक का काम यह है कि वह मूल लेखक को यथासंभव आकर्षक बना कर पेश करे, बशर्ते कि वह उसकी मूल प्रकृति की रक्षा कर पाए और उसे इतना न बदल दे कि उसका निजी स्वरूप ही परिवर्तित हो जाए, अनुवाद एक प्रकार से जीवन की अनुकृति है, सभी सहमत होंगे कि अनुकृति दो तरह की होती है – अच्छी और बुरी, रूपरेखा यथावत बना लेना, नाक-नक्श सही उतार लेना, बिल्कुल ठीक अनुपात कर लेना और संभवतः कामचलाऊ रंग भी भर लेना यह सब एक बात है; लेकिन इन सब में लालित्य, मुद्रा, भाव-भंगिमा आदि रंगों का उतार चढ़ाव, डाल पाना, एक ऐसी सचलता भर पाना जो इन सब में जान डाल दे। यह एक बिल्कुल अलग बात है।"[4]

इस बात का खास ख़्याल अनुवाद में निहित होता है कि किसी भी भाषा में वहाँ के आवाम की तस्वीर नजर आती है। वो तस्वीर सामूहिक भी होती है व्यक्तिगत भी। यानि 'कलेक्टिव' भी और इंडिविजुअल भी। उसमें एक अकेला प्रतिनिधि नुमाइंदा होता है जिसमें संस्कृति रची-बसी होती है। इस अध्याय में जिन समस्याओं की ओर प्रकाश डाला गया है वे इस प्रकार हैं –

वाह्य और आंतरिक संरचना के परिवर्तन की समस्या :

अनुवाद में मूल कृति सिर्फ हड्डियों का ढांचा बनकर रह जाती है कृति का खून, जिस्म, रफ्तार मौज खत्म हो जाती है तो जो कुछ अनुवाद में खत्म हो जाता है वही कृति का अद्ब होता है मसलन –

"नहीं तेरा नशेमन करने सुल्तानी के गुंबद पर

तू शाहीन है बासीरा का पहाड़ों की चट्टानों पर।" – इकबाल

इसमें 'शाहीन' इकबाल कृति का एक काल्पनिक था जिस तरह अंग्रेजी कवि शैली का काल्पनिक 'स्काइलार्क' था। कीट्स का काल्पनिक परिंदा 'नाइटएंगल' था। अनुवाद में मसला यह है कि अंग्रेजी जानने वाले 'शाहीन' की अहमियत को कैसे पहचानेंगे। क्योंकि 'शाहीन' एक काल्पनिक परिंदा ही नहीं बल्कि एक तहजीब, एक संस्कृति का प्रतिनिधि है। इसके मायने यह हुए कि शब्दों का इस्तेमाल भी मायने में

तब्दीली ला सकता है जोर इस बात पर है कि शब्द का इस्तेमाल किस सार-तत्व को उभारने के लिए किया गया है।

खासकर कविता में शब्द के भीतर बीज शब्द और उसके भीतर वह तत्व मौजूद होता है जो सदैव जीवित रहता है, कभी मरता नहीं। शब्द का एक अर्थ : एक निश्चित काल खण्ड के भीतर उस काल के साथ, निश्चित वक्त तक साथ रहता है काल की समाप्ति पर वह लुप्त हो जाता है। "आप जो चाहे कह सकते हैं, जी हाँ, लेकिन वह शब्द ही है जो गाते हैं, जो ऊँची उड़ाने भरते हैं... और नीचे उतरते हैं.. मैं उनके सामने नतमस्तक हूँ ... मैं उन्हें प्यार करता हूँ, उनसे चिपकता हूँ, धक्के भी देता हूँ, दांत गड़ाता हूँ और पुचकारता भी हूँ... शब्दों को मैं कितना प्यार करता हूँ... अप्रत्याशित शब्द... ऐसे शब्दों पर घात लगाए रहता हूँ... मुझे स्वरों से प्यार है... वे रंगीन पत्थरों की तरह चमकते हैं... चांदी की मछली की तरह उछलते हैं... इतने सुंदर हैं कि सबको कविता में फिट कर देने का जी चाहता है... शब्द बहुत प्राचीन हैं और अति नवीन भी... ताबूत में या फूल के कोष में बंद... कितनी महान भाषा है मेरे पास वह सुंदर बर्बर विजेताओं से हमें विरासत में मिली है... शब्द उन बर्बरों के बूटों से, घोड़ों के नाल से, टोप से, दाढ़ियों से रोड़े की तरह लुढ़क पड़े थे... वे सब कुछ लूट ले गए... सिर्फ शब्द छोड़ गए.. हमारे लिए।"[5] इसलिए शब्द का दूसरा व्यक्तित्व काल के साथ-साथ अपना रूप परिवर्तित किए एक नए अर्थ को धारण करता है जो अर्थ काल के निश्चित दायरे में लुप्त हो जाता है वो फिर कभी नहीं आता। शब्द के भीतर जो बीज शब्द है वह अपने भीतर असीम अर्थ की संभावना से भरा है या कहें, काल से परे है कभी लुप्त न होने वाला अर्थ।

कविता में शब्द का संयम समय के साथ अत्यधिक गहरे रूप से जुड़ा होता है। यही संयम तब्दील होता है समय के परिवेश, प्रकृति, परिस्थिति, के अनुकूल विभिन्न आयामों में। इस प्रक्रिया में शब्द के भीतर अर्थ, अर्थ के अंतस्तल में समय, समय के तल में बीज शब्द का एक ऐसा रिश्ता है जैसे – दिल के आइने में है तस्वीरे यार/जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।

अनुवाद के दौरान – शब्द का संयम – समय – अर्थ के विविध आयाम और शब्द के भीतर अर्थ – अर्थ के भीतर समय – समय के भीतर बीज – शब्द को

आत्मसात करना लक्ष्य भाषा और 'संस्कृति' के लिए बेहद मुश्किल और जोखिम से भरा है। क्योंकि कविता के भीतर 'टाइम एण्ड स्पेश' में जाकर ठहरना नामुमकिन है और अर्थ का संसर्ग पाना उससे भी कठिन कार्य है। जबकि अनुभूति के एक स्तर तक अनुवादक पहुँचने में कामयाब होता है।

ये सारी जटिलताएँ होने के बावजूद शब्द, अर्थ और समय के भीतर बीज–शब्द एक दूसरे से गुंथे लगाव के रिश्ते में बंधे हैं किंतु उनकी स्वतंत्रता, अस्तित्व कहीं भी खण्डित नहीं होती। सभी का अस्तित्व बिल्कुल अनासक्त है, आसक्त होकर भी। वजह चाहे जो भी हो इनके बीच का संतुलन इतना 'परफेक्ट' है कि इन्हीं में सृष्टि के सारे तत्व स्वतंत्र-अस्तित्व में मौजूद हैं। इन तत्वों की स्वच्छंदता और समर्पण से नवीन अर्थ का स्पंदन और साक्षात्कार होता है। एक समय में स्फुटित अर्थ स्पंदित होकर सृष्टि में उतरता है तो कृति में समय और बीज-शब्द अर्थ में स्पंदन के साथ ही अर्थ को सृष्टि के साथ सृष्टि में विलीन होने तक उसका निर्वाह करते हैं फिर साथ छोड़कर अलग हो जाते हैं समय और शब्द को यह परवाह नहीं, कोई अर्थ, कब तक उसके साथ रहेगा। "किसी भाषा के साथ आप जिंदगी भर यों ही नहीं रह सकते। उसे इधर-उधर खींचना, जहाँ-तहाँ टटोलना, बालों से खेलना, पेट में कोंचना आदि हरकतें आदत बन जाती हैं। बोली जाने वाली भाषा के और आयाम हैं लिखित भाषा अप्रत्याशित लचीलापन हासिल करती हैं। भाषा को अपने शरीर-त्वचा या पहनावे की तरह इस्तेमाल करने का अर्थ है उसकी बाहों, पैबंदों, खून पसीने के धब्बों आदि सबके साथ अपनाना, और यहीं किसी लेखक की क्षमता और साहस की परीक्षा होती है।"[6] अनुवाद में इतनी गहराई को पाना किसी भी भाषा में शायद ही संभव हो, क्योंकि अनुवादक के पास शब्द, समय, अर्थ तीनों मौजूद होते हुए भी उनकी स्वतंत्रता, निजता, अस्तित्व का बोध कर पाना कविता की रूह में उतरने जैसा कार्य है।

'क्रिस्टीनी रॉजेटी' द्वारा रचित कविता 'रेमेम्बर' में इस बात को समझा जा सकता है।

"Remember we when I am gone away

gone for a silent land;

when you can no more hold me by hand,
Nor I half-turn to go yet turning stay.
Remember me when no more day by day.
You tell me of our future that you planned,
Only remember me; yore understand.
It will belate to counsel than or pray.
yet if you should forget me for a while
And afterwords remember, do not grieve;
for if teh darkness and corruption leave
A vertiqe of the thoughts that once I had,
Better by far you should forget and smile.
Than that you should remember and besad.

इसका जो अनुवाद उमेश जोशी द्वारा किया गया वो है –

"मुझे याद कर लेना मेरे जा चुकने पर
बहुत दूर जब नीख जग में पहुँच चुकूँगा
जब तुम न मेरी फिर बांह पकड़ पाओगी,
न मैं जाने को मुड़-मुड़कर रूक-रूक लूँगा।
मुझे याद कर लेना जब न मुझे प्रतिदिन तुम
आयोज़ित आगत सपने बतला पाओगी
याद मात्र करना, इतना तो तुम भी समझो
तब हो चुकेगी देर परामर्श या प्रार्थना को
पर हाँ, यदि कुछ क्षण को तुम जाओ भूल मुझे

फिर कर लो याद पुनः तो दुःख मत करना,
क्योंकि बचे कुछ अंश अगर वैतरणी तट से,
उन भावों का जिन से मैं हूँ सराबोर
कहीं सुंदर होगा तुम मुझको भूलो पर मुस्काओ
इससे कि करो तुम याद व हो जाओ उदास..."

मूल कविता 'रेमेम्बर' अंग्रेजी के कवि 'मिल्टन' के 'सॉनेट' की तरह है। उमेश जोशी ने अंग्रेजी की इस पद्धति व वाक्य संरचना को बनाए रखने की कोशिश में हिंदी में अनुवाद का जोखिम उठाया – क्या यह अनुवाद शाब्दिक अर्थ, अंर्तवस्तु, भाव, प्रगीतात्मकता, कल्पना टोन, अंदाज, आदि को पूर्णतः जज़्ब कर पाने में सफल है? क्या कुछ भी उस जैसा है जो मूल कृति में है। दरअसल यह अनुवाद 'सॉनेट' परंपरा का निर्वाह और अर्थ-संप्रेषित न कर पाने की विवशता से भरा है। क्योंकि मृत्यु, प्रेम, और पीड़ा का अद्‌भुत संचयन है 'स्मरण' या 'रेमेम्बर'

कविता में प्रेयसी मृत्यु के बाहुपाश में है। और प्रेम-पात्र के प्रति उसकी निष्ठा, चिंता – संवेदना, संवाद और विचार पूर्ण समर्पित भाव से निहित हैं, कवि ने इन विषयों की शास्वता को अत्यधिक सुलझे हुए ढंग से प्रस्तुत किया है। इनके बीच है जीवन का असीम फलक। प्रेयसी देखती है पीड़ा की गहनतम अनुभूति में सर्वस्व को, जो प्रेम है, मृत्यु है, पीड़ा है, जीवन का अस्तित्व इसी में समाया है। कवि की स्वीकारोक्ति है इनके बीच रहकर जीवन-आनंद को अपनाने की। यह अस्तित्व है आसक्त। फिर भी अनासक्त। आसक्ति और अनासक्ति के बीच है – प्रेम, मृत्यु, पीड़ा। आसक्ति है – जीवन की पूर्णतः और आनंद। इस पूर्णतः के केंद्र में है – स्मरण या 'रेमेम्बर'।

कविता इतनी सृजनात्मक और रचनात्मक है कि कवि ने छोटे से फलक में जो चित्र प्रतिबिंबित किया है उसमें असीम चेतना गहराई में समाई है। जटिल लगने वाले प्रश्न सहजता से जीवन की स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में उभरे हैं। सारे रहस्य भीतर समाए जीवन की एकरूपता का हिस्सा बन गए। स्मरण के भीतर मन का

प्रवेश सरल अनुभूति का क्षण मालूम होती है। कोई विचित्रता या चमत्कार नहीं। समस्त विचार-प्रक्रिया के साक्षी होने की विधि का रूप है – स्मरण इसीलिए कह रहा हूँ उमेश जोशी द्वारा किए गए अनुवाद में कृति अपने रूप और अंर्तवस्तु को लेकर उदासीन दिखाई देती है जिसमें जरा सी उत्सुकता नहीं दिखाई देती। 'नो आई हाफ-टर्न टू गू येट टर्निंग स्टे', 'डार्कनेस', 'करप्शन', 'साइलैंट' आदि का काव्यात्मक सौंदर्य अनुवाद में विलुप्त हो गया है। संगीतात्मकता अनेकानेक बार बाधित हुई है। अनुवाद का अंदाज, और फितरत की शक्ल बदली-बदली सी नजर आती है – 'इट विल बी लेट टू काउंसल देन और प्रे' में अर्थ का ह्रास हुआहै। जबकि हिंदी में इस कविता का अनुवाद बेहतर, और खूबसूरत अंदाज में हो सकता है। क्योंकि "किसी कवि कृति के अध्ययन के समय उसकी अनुभूतियों के साथ पाठक का जो तादात्म्य होता है वह कभी पूर्ण, कभी अंशतः पूर्ण और कभी अपूर्ण हो सकता है इस तादात्म्य की मात्रा के न्यूनाधिक पर केवल उसके अपने आनंद की मात्रा का नूनाधिक्य निर्भर है; किंतु जब वह किसी भी अनुभूति को मर्मतः दूसरों तक संप्रेषणीय बनाने का कर्तव्य अंगीकार कर लेता है, तब उसका तादात्म्य या उसका अभाव दो पक्षों के प्रति उत्तरदायी है।"[7]

इसके अलावा कविता के समानांतर शब्द की समस्या को एक और उदाहरण द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है –

"Morning and evening
maids heard the goblins cry;
come buy our orchard, fruitds,
come buy, come buy;
our grapes fresh from the vine,
pomegranets full and fine,
dates and sharp bullaces,
Rare pears and greenages,
Damsons and bilberries,
Test them and try"

इस कविता में 'गॉब्लिन' 'बिलबेरिस' शब्द का कोई समानार्थी शब्द अनुवाद के दौरान हिंदी में शायद ही उपलब्ध हो। अतः इसे ज्यों का त्यों मूल भाषा से लेना हिंदी की विवशता है। इसके अलावा 'वाइन' 'फाइन', 'बुलक्श' 'गैग्स' शब्द का पंक्ति के आखिर में आना कविता में संगीत पैदा करता है जाहिर है अनुवाद के दौरान शब्द की यह तारतम्यता टूट जाएगी, लहजा, प्रवाह, मिजाज, तेवर का क्रम बिगड़ जाएगा।

अनुवाद की बाध्यता है शब्द, समय, बीज-शब्द, अर्थ का यह वर्तुलाकार मिजाज। यही शब्द का अस्तित्व भी है इसी के अनुरूप अनुवादक को चेतन और जज़्बाती होकर कविता में दखल देना पड़ता है। यह बाध्यता भले ही अनुवादक के लिए कष्ट साध्य हो। ऐसे में वह अपनी प्रकृति, व स्वभाव के अनुरूप कई बार शब्दों के भीतर छिपे आनंद, स्फूर्ति, संगीत, संजीदगी व अर्थ को नजरअंदाज करने का प्रयास करता है। शब्द की यह बाध्यता अनुवादक को क्षति पहुँचाती है, क्योंकि शब्द "शीशे को शीशे का गुण' और 'लहू को लहू' प्रदान करता है।[8] अनुवादक अपने अस्तित्व के भीतर रहकर ही, उस स्वतंत्रता में जीते हुए कृति के संसर्ग की अपेक्षा से भरा होता है। वह अपने सुख में कृति का सुख चाहता है। चाहे तो वह कृति की इस बाध्यता में भी खोज सकता है – स्वत्व की स्वतंत्रता, सुख, आनंद, प्रकृति व स्वभाव। बशर्ते उसे पूर्ण समर्पित भाव से कृति को भोगना पड़ेगा। तभी शब्द की परतंत्रता में अपनी स्वतंत्रता मालुम हो सकेगी।

चाहे कोई भी कृति हो, खासकर कविता में शब्दों की स्वतंत्रता परम है, अल्टीमेट है, चरम है। शब्दों के ऊपर यह कहने वाला कोई नहीं कि वे किस दिशा में कहाँ तक जाएँ। इसके बरक्स अनुवादक को शब्दों की अनदेखी राहों पर गुजरते हुए, उसके नक्शे पा पर की पहचान करते निरंतर तय करना पड़ता है – अनंत तक का सफ़र। कई बार अनुवादक शब्द की स्वतंत्रता को प्रकृति व स्वभाव के अनुरूप, निश्चित समय सीमा में सीमित रख; समूचे अर्थ को इस बाध्यता में जीवित रहने को मजबूर करता है, एक निश्चित अर्थ जहाँ वह पहुँचकर ठहरता है फिर आगे नहीं बढ़ता। यहाँ भी शब्द की स्वतंत्रता में ही जीता है। जिस क्षण अनुवादक अपनी स्वतंत्रता के दायरे को लाँघकर शब्द की स्वतंत्रता में प्रवेश करेगा। उसी क्षण वह अर्थ की अनंत गहराईयों तक जा गिरेगा। और कविता/कृति अनुवाद के फलस्वरूप

चरम-उत्कर्ष को पा लेगी। किंतु इसमें कठिनाई है कष्टप्रद क्षणों की अनुभूति से वह भरा है।

यहाँ मैं जिस स्वतंत्रता की बात कर रहा हूँ उसका अर्थ है; नितांत अकेलेपन में जीना, जहाँ शब्द समय और अर्थ का सहारा लेकर भी अकेला, नितांत अकेला है। यह उसकी अपनी प्रकृति की भीतरी और गहन संरचना है। कृति की दुनिया में शब्द का आना और कविता की दुनिया के एक छोर को पार कर, दूसरे छोर तक जाना या कहें हमारी दुनिया में प्रवेश करना बिना किसी बाध्यता के होती है – यह समूची प्रक्रिया। शब्द के बीच होती है दो दुनिया के रहस्यों की छवियाँ। "कविता के अनुवाद में यह रोपाई विशेष रूप से नाजुक काम बन जाती है इसे ऐसे हाथों से होना चाहिए जिन्हें पौधे के जड़ की परवाह हो और उसके भीतर छिपे बीज की पहचान। अनुवादक यह कहकर हार मान सकता है कि यह पौधा अपनी जड़ से उखड़ने से सूख जाएगा। इसलिए यह अनुवाद असंभव है। सच्चाई यह है कि कविता का हर अनुवाद पराई भाषा में जी सकता है। बशर्ते कि अनुवादक के पास भाषा की एक खास तरह की समझ, सहानुभूति, कल्पना और भाव प्रवणता हो। अपने प्रयत्नों के अंत में जब वह अनुवाद प्रकाशित करे तो कलात्मक स्तर पर यह विश्वसनीय लगे।"[9]

अनुवादक को अक्सर यह भ्रम होता है कि शब्द कभी स्वतंत्र, बिल्कुल अकेला था ही नहीं। बरक्स इसके सच कुछ और ही हैं शब्द की एकांतिकता में ही संभव है तमाम दुनिया की सूरतों का प्रतिबिंबन है शब्द का यही सार-तत्व है। जबकि अनुवादक की स्वतंत्रता उसकी प्रकृति, उसके स्वभाव में निहित है। अपनी स्वतंत्रता में रहकर, जीते हुए शब्द की प्रकृति और स्वभाव को पाना सिर्फ छलावा है जहाँ शब्द का एक छोर पाने में कामयाब होता है अर्थ का एक सिरा ही हाथ आता है इससे कविता के साथ निकटता तो संभव है किंतु एकात्मिकता संभव नहीं। एकात्मिकता के लिए मूल और लक्ष्य दोनों भाषा के परे जाना पड़ता है। अनुभूति के गहन-तल में और तब उसे एक भाषा में, एक आकृति में बदलना पड़ता है।

यह समूची प्रक्रिया एक तपश्चर्या है। जहाँ अनुवादक का ध्यान कई बार टूटता है। मन नहीं चाहता शब्दों के भीतर नीरवता में खोना। शब्द के उथले अर्थ

लहरों की भाँति बार-बार अनुवादक के मनष से टकराते हैं। और अनुवादक उनमें से एक अर्थ को मुट्ठी में भर लेता है। शब्द के एक छोर का सत्य उजागर करते हुए शब्द की संपूर्णता, सत्य दूसरे छोर पर शब्द के संस्कारिक रहस्य, अछूते रह जाते हैं अतल गहराईयों में। उससे कहीं दूर बहुत दूर होता है वास्तविक अर्थ और उसका साहचर्य, जो कि अपने स्वभाव प्रकृति से बिना भटके, बिना विद्रोह, बिना उपद्रह किए कभी हासिल नहीं होता। यही बात किसी भी भाषा और अनुवादक के लिए कही जा सकती है।

सांस्कृतिक लफ़्जों के अनुवाद की समस्या :

सांस्कृतिक भाषा का एक पहलू है जो विस्तार है, व्यापक है, असीम है, चरम है। सभी संस्कृतियों में जिसके अंश छिपे हुए हैं। संस्कृति में लफ्ज हैं जिसके कारण नियम हैं प्रतिक्रिया है, परंपरा है, इतिहास है, प्रेम है, संबंध हैं। शब्दों की अपनी संस्कृति है। बगैर सांस्कृतिक भाषा के आवाम की चेतना, विद्रोह, बगावत, प्रेम, नियमों की व्यवस्था बनी रह सकती है? शब्द संस्कृति की व्यवस्था में जीते हैं। और संस्कृति शब्दों के अनुशासन में। यदि शब्दों से संस्कृति का संबंध न रहे तो क्या होगा? सारे विधि-विधान और सब कुछ का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। सारी श्रृंखलाएँ जिससे संस्कृति विकसित हो रही है। टूटेंगी, शब्दों के बगैर संस्कृति और संस्कृति के बगैर भाषा की परिकल्पना संभव नहीं। 'चित्र, संगीत, मूर्ति इत्यादि कला के अन्य रूपों की अपेक्षा और स्वयं भाषिक माध्यमों में भी कविता भाषा में होने के कारण अपनी खास संस्कृति, मानसिक बुनावट, स्वभाव, वातावरण और मिथकों इत्यादि में इस कदर गुंथी रहती है कि उसका तद्वत अनुभव असंभव है स्वयं अपनी भाषा में, कवि के निजत्व का एक पेंच यह है कि तद्वत तादात्मय वहाँ भी संभव नहीं है। तब विदेशी और खासकर संस्कृतियों में इतने गहरे अंतर के कारण यदि दूरी अधिक हो जाए तो आश्चर्य नहीं।'[10]

इस तरह जब दो संस्कृतियाँ एक दूसरे के समक्ष अपने-अपने अस्तित्व को लिए संपर्क में आती हैं तो शब्दों का अनुशासन ही विवेक प्रक्रिया के सहज रूप से उन्हें रागात्मक संबंधों में संबद्ध करता है – दोनों भाषाओं के बीच सारे खतरे उठाए। कोई भी संस्कृति और भाषा जिस जलवायु में पैदा होती हे उसी के अनुरूप

विकसित होती है। यह विकास सिर्फ संस्कृति व भाषा का विकास ही नही, व्यक्ति की समूची चेतना का विकास है। भारतीय संस्कृति के अस्तित्व में आने के समय भाषा और शब्द धर्म के अधीन थे और संस्कृति शब्दों के पराधीन। व्यक्ति चेतना के विकास क्रम में ही संस्कृति, भाषा, और धर्म तीनों का स्वरूप निहित है। अब ये सारी व्यवस्थाएँ 'अंडरस्टैंडिंग' या सहज भाव से अपनी प्रथकता में जी रही हैं। शब्द धर्म तक सीमित नहीं, संस्कृति शब्द तक सीमित नहीं। भले ही इन सब का अतीत वर्तमान, इतिहास, भविष्य के गर्भ में शब्दों में ही बयान होगा। अब संस्कृति के अपने पड़ाव हैं। शब्दों का अपना ठहराव है। धर्म का अपना... मार्ग एक ही है भाषा। पहले मार्ग था धर्म। एक ओर शब्द, संस्कृति, धर्म के बीच गहरा तनाव है, वहीं दूसरी तरफ इन तीनों के बीच सहज संबंध है – स्वतंत्रता। पहले ये परतंत्रता की सीमा में थे। जहाँ धर्म था – सिद्धांत, अनुशासन, स्वतंत्रता। अब स्वतंत्रता है – विद्रोह। यहाँ सारे नियम, अनुशासन टूट गए हैं। सबकी अपनी स्वतंत्रता है, अनुशासन है।

सांस्कृतिक भाषा के अनुवाद में शब्द की स्वतंत्रता के दो तरह के आयाम हैं। पहला है लक्ष्य भाषा के खिलाफ, स्वतंत्रता। दूसरा है लक्ष्य भाषा के साहचर्य में 'सहज स्वतंत्रता' – "जब दूसरे देश की भाषा को हम संगोपांग रूप से अपनाते हैं। अपने देश की सीमाओं का अतिक्रमण करते ही हैं, उस देश की संस्कृति, मानसिकता को प्रकारांतर से स्वीकार करके अपनी स्वतंत्रता का विखण्डन भी करते हैं।"[11]

किसी भी भाषा का शब्द प्रकृति के साथ संपर्क बनाए है। प्रकृति और संस्कृति शब्द को रंग देती है भौगोलिक और जैविक परिस्थितियाँ उसे अर्थ की तहों से संयुक्त करती हैं। खासकर सांस्कृतिक और भाषा के अनुवाद में यही गहराई से जुड़ी हैं। ये समानता और भिन्नता के आधार पर भाषा का अस्तित्व बनाती है। इसीलिए किसी भी भाषा का अनुवाद तकरीबन-तकरीबन नामुमकिन सा है। अनुवादक की विशेषता ही है कि वह खुद को उकसाए। नए अर्थ की तलाश के लिए लगातार प्रेरित करे। मसलन – 'माता' शब्द को लें। माता कहते ही हिंदुस्तानी भाषा में एक सांस्कृतिक इतिहास उभर आता है – भातर-माता का। जबकि अंग्रेजी में 'मदर' कहते ही एक दूसरा इतिहास उभरता है – जीसस की 'मा, मेरी' का।

तात्पर्य यह है कि अनुवाद करने वाला किस सांस्कृतिकता को महत्व देता है अनुवाद के दौरान वह किस बिंब के जरिए सही अर्थ को लक्ष्य भाषा में समझा सकता है।

यही कारण है अनुवाद में शब्द की तर्फों तक पहुँचना बहुत मुश्किल काम है शब्द की तह में मायने की तलाश, फिर दूसरी भाषा में उसके समतुल्य शब्द 'काउंटर पार्ट' या 'कॉरेसपॉण्डिग पार्ट' वाकई में संभव है? जिसमें मूल भाषा का इतिहास, परंपरा, संस्कृति बसी हो। इसीलिए कहा गया है साहित्य वह है जो अनुवाद में खो जाता है और अनुवाद साहित्य में कालीन की निचली परत की तरह होता है। "हर भाषा विभिन्न परिस्थितियों से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक जूझने के लिए अलग-अलग रणनीतियाँ बनाती हैं। और उन्हें व्यक्त करने के लिए अलग-अलग मुहावरे गढ़ती है इन सबका सीधा संबंध उस भाषा के बोलने-लिखने वालों की मान्यताओं, पूर्वाग्रहों व बंदिशों से होता है या इसे यूं कहें कि हर भाषा की अपनी होती है और विभिन्न अवसरों पर इस धर्म का निबाह करने के लिए विभिन्न भाषाई परंपराएँ होती हैं, विभिन्न भाषाई रीति-रिवाज होते हैं।"[12]

भाषा कोई भी हो, कैसी भी हो। उसमें उद्दाम वेग से आपूरित होने की गुंजाइश होती है। किसी भी भाषा की प्रकृति में जाकर आबोहवा को सिद्दत से महसूस करें तो भाषा के प्राणों में उन शिखरों को छूने की आकांक्षा है जो जीवन और संस्कृति के शिखर हैं। ऐसा इसलिए है कि उन अज्ञात सागरों को खोजने के लिए प्राणों में उद्दाम पीड़ा है जीवन की गहराई, जीवन की ऊँचाई।

जीवन के उद्दाम वेग से जीने की ऊर्जा है भाषा जो जीवन के रस से भरी है, जीवन के आकाश में फैलती है भाषा की शिराओं में समूची दुनिया की चेतना बसी है भाषा ही है जिसमें नए बदलाव की धारा बह रही है।

दो भाषा के बीच अनुवाद में जो केंद्रित बिंदु है वह है – विद्रोही चेतना। जिसमें मौजूद है किसी भी भाषा के एकांगीपन को खत्म कर पुनः सृजन करने की शक्ति। सृष्टि और ब्रह्माण्ड में छिपे भू-गर्भित रहस्यों की छानबीन कर उन्हें अर्थ की असीम संभावनाएँ देना विद्रोही चेतना का कार्य है। समसामायिक अनुवाद नई

संकल्पनाओं से भरा है जिसमें 'स्प्रिचुअल यंगनेस' (आत्मिक यौवन) की ऊर्जा का संचरण होता है। अतः किसी भी भाषा में एक गहरी संभावना छिपी होती है जिससे वह हमें संस्कृति के मरकज से उसकी सरहदों तक ले जाती है मूल भाषा में ही संस्कृति को अपने ढंग से देखने, दुनिया को कायनात को, समझने का खास अंदाज होता है। मसलन – 'ब्रह्मांड' और 'खुदाई'। दोनों शब्दों में कोई समानता नहीं है। 'ब्रह्मांड' कहते ही हमारी स्मृति में एक मंजर उभरता है और 'खुदाई' कहते ही एक दूसरा मंजर। जबकि एक ऐसा व्यक्ति जो इन दोनों से इतर 'बिग बैंग थ्योरी' अर्थात् जो कायनात के वुजूद में किसी परमात्मा को नहीं मानता। वह वैज्ञानिक तरीके से कायनात के बनने को, मंजर को, एक अलग नजरिए से देखेगा। जबकि 'ब्रह्माण्ड' और 'खुदाई' दोनों अलग-अलग भाषा और संस्कृति की खास पहचान हैं। जिसके जरिए उस जहान के बाशिंदों, आवाम के जज़्बात को समझा जा सकता है। यही हर संस्कृति और भाषा की विशेषता है।

अनुवादक के लिए मुश्किल है कि वह जिस भाषा और संस्कृति में रहा। उसका लगाव, प्रेम, मोह, आसक्ति किसी एक भाषा के प्रति न होकर दोनों भाषा के लिए समान हो। अनुवाद में यह खासी मुश्किल भरा है। "अनुवाद सिर्फ भाषांतरण ही नहीं, एक सांस्कृतिक प्रतिक्रिया भी है भाषा के माध्यम से दो संस्कृतियाँ एक दूसरे में प्रवेश करती हैं कभी मैत्री भाव से कभी प्रतिद्वन्द्वी बनकर। संस्कृतियों की इस द्वन्द्वात्मकता में न हम सहज हैं न वह। दो अलग रसायनों से बनी इस मानसिकता की फांक अनुवाद में सबसे अधिक उजागर होती है, रहन-सहन, बुनियादी शब्द-समूह, और संवादों या संबोधनों में यह तनाव और दूरी एक नहीं होने देती। 'बापू' शब्द मेरी चेतना में जो तस्वीर बनाता है 'डैड' या 'पापा' होते ही वह धोती-कुर्ता छोड़कर कमीज पैंट पहन लेता है।"[13]

जो सबसे बड़ी अनिवार्यता है दो भाषा के बीच संपर्क साधने में वह है – अंतः प्रज्ञा। फिर किसी भी भाषा के प्रति कैसा विरोध, कैसी आसक्ति, यह थोड़ा मुश्किल है अनुवादक के लिए।

यदि अनुवादक कृति के अनुवाद में भाषा के सांस्कृतिक शब्द के अर्थ को महत्व नहीं देता। बरक्स इसके अपनी सांस्कृतिक भाषा के मायने को लाता है तो

वह अपनी सांस्कृतिक भाषा का बोझ ढो रहा है इससे इतर कुछ भी नहीं। वह अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए किसी भी भाषा का तिरस्कार कर रहा है । दोनों भाषा के खिलाफ है उसकी स्वतंत्रता। जबकि कोई भी भाषा अनुवादक की सहज स्वतंत्रता और आंतरिक चेतना को गतिमान बनाती है। वह ठीक विपरीत स्वच्छंदता में जीता है। जहाँ वह भाषा के प्रति जज़्बाती न होकर नकारात्मक और विधायक होता है । यह अनुवादक के लिए तनाव की स्थिति है। वह सहज स्वतंत्र नहीं है। सहज स्वतंत्रता है – अनुवादक की स्वतंत्र चेतना हिस्सा बन जाए दोनों के बीच। जहाँ से पैदा होता है राग। अनुवादक को व्यक्तिगत स्वतंत्रता की धारणा को बदलना होगा। "मुख्य रूप से दूसरी संस्कृतियों के संदर्भ में दो संस्कृतियों के बीच अनुवाद एक तरह की रचनात्मक मुठभेड़ है।"[14]

सांस्कृतिक भाषा के शब्द को लक्ष्य भाषा में मुकम्मल मायने देना यकीनन मुश्किल है। यह मुश्किल जुड़ी है अनुवादक की विचारधारा से। अनुवादक की निष्पक्ष दृष्टि की कसौटी क्या है? जिससे दो कौम, भाषा, आवाम के बीच गहरा रिश्ता कायम हो सके। क्योंकि मूल जबां से लक्ष्य भाषा में अनुवाद के बाद लॉजिक, ग्रामर, एसेंस, रियालिटी और ख़्याल को बरकरार रखना बेहद मुश्किल है। कई बार लक्ष्य भाषा तक आते-आते शब्द का मिजाज, लहजा, अंदाज, हुनर, दस्तूर, रवानगी, यहाँ तक सूरत ही बदल जाती है। अनुवादक इस दूरी को कैसे खत्म कर सकता है। खत्म न भी हो कम तो किया ही जा सकता है। इसके पीछे सच यह है कि हर भाषा अपनी अपनी दुनियावी कवायदों का नौरस होती है। मुश्किल यह है कि एक भाषा की मिठास, गंध, रंग दूसरी भाषा में नहीं मिलती।

दारुवाला के काव्य में जो काव्य चरित्र उपस्थित होते हैं वे अलग-अलग ऐतिहासिक व्यक्तित्व ही नहीं हैं इनके साथ जुड़ा इतिहास और कथा का अवलोकन करें तो हमें इनकी संस्कृति की पहचान भी इनमें मिलती है जैसे ब्रूटस और बॉरजेस कवितामें ये दो मात्र ऐतिहासिक पात्र ही नहीं है बल्कि इसका एक प्रसंग युगीन समाज और संस्कृति का प्रतिबिंबित करता है और दूसरा ऐतिहासिक परिदृश्य को। लेखक ने इन दो पात्रों के जरिए एक तरफ जहाँ युगीन सामाजिक समस्याओं को उद्घाटित किया है वहीं दूसरी ओर इन पात्रों के एतिहासिक घटनाक्रम को भी आधार बनाया है।

इसके अलावा 'ऑफ मोहमद अली पाशा' कविता में मोहम्मद अली पाशा, दाहमोश, रामेशस, अलकपास, लुईस, सलादीन, मामेल्यूकियों आदि ऐतिहासिक पात्र हैं। अन्य कविता में 'टू जॉर्ज ब्रॉक' के अंतर्गत जार्ज ब्राक को आधार बनाकर कवि ने अपनी संवेदना को रंग दिया है। ये रंग कवि के रंग हैं जिन्हें वो जार्ज ब्रॉक के रंगों/तूलिका में समोए हुए हैं, 'बचपन की कविता' में सैक्रेड हार्ट स्कूल, इतालवी फादर। इनका अपना एक सांस्कृतिक इतिहास और परिप्रेक्ष्य रहा है जिसे कविता में इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए ताकि कविता के मर्म तक पहुँचा जा सके। या फिर 'ओस्लो फ्रैग्मेंट' कविता में ओस्लो का काव्यात्मक और सांस्कृतिक महत्व दोनों के बीच का भेद कविता में छिपा हुआ है या फिर 'ए टेल ऑफ टू स्टेटस' कविता में विक्टोरिया, गांधी आदि चरित्र कविता की मांग भी पूरी करते हैं और ऐतिहासकिता को भी बनाए रखते हैं। ये सांस्कृतिक प्रतीक हैं जिनका अपना एक खास संदर्भ है और इसे उसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए तभी कवि की दृष्टि को समझा जा सकता है। अगली कविता 'द अखोण्ड ऐट इसफाहन' में हुसैन का रंग, इसफाहन, फालगीर, हाफिज, तासगीर आदि दारुवाला की कविता नें एक ओर एक अन्य घटना को अंजाम देते हैं वहीं इनकी ऐतिहासकिता पर भी प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता।

कवि ने ऐतिहासिक संबंधों और चरित्रों को लेकर वर्तमान परिवेश और परिस्थिति के साथ सामंजस्य बनाने की सार्थक कोशिश की। इसके साथ गहरे रूप में जुड़े होने के कारण अर्थ को साथ ही खोजा जा सकता है। दारुवाला के काव्य में सांस्कृतिक प्रतीकों का वैशिष्ट्य यही है कि वह विभिन्न देशों के चरित्र, घटनाओं को समेटे हुए सीधे कवि की संवेदना से जुड़ते हैं। और कवि के मन में जो ऐतिहासिक बोध से सीधे जोड़ा जा सकता है। कवि का यह अपना निजी वैशिष्ट्य है। इन सांस्कृतिक प्रतीकों का अनुवाद करने पर क्या वही भाव जो मूल कविता को सींचते हैं बिल्कुल वही भाव लाये जा सकते हैं क्योंकि हर भाषा की अपनी सीमाएँ हैं और अपने शब्द हैं।

आज के समाज में भले ही ब्रूटस और बॉर्खेज जैसे ऐतिहासिक पुरुष न रहे हों किंतु ऐसे चरित्रों का अभाव नहीं है। ऐसे चरित्र समाज नें सर्वत्र व्याप्त हैं।

लेखक ने इन पुरुषों के माध्यन से युगीन सामाजिक व्यवस्था को उद्घाटित किया है।

प्रत्येक समाज की संस्कृति की अपनी एक विशेषता होती है। इस तरह प्रत्येक संस्कृति की भी अपनी एक विशेषता होती है। संस्कृति की रूपरेखा प्रायः परंपरागत होती है यानि एक संस्कृति क्षेत्र विशेष की परंपराओं द्वारा संचित विशेषताओं को ही परिभाषित करती है। इस तथ्य की पुष्टि रेणु द्वारा रचित 'मैला आंचल' से की जा सकती है। दारुवाला ने – अल्लाह नौटंकी.... आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

अल्लाह	भगवान	गॉड
इस्लाम संस्कृति	हिंदु संस्कृति	ईसाई संस्कृति

इसी प्रकार दारुवाला ने कुछ शब्दों का भी प्रयोग खास संदर्भ और सांस्कृतिक महत्व के तहत किया है। लंदन ब्रिज इज फालिंग डाउन, माई फेयर लेडी।

उक्त श्लोक क्रमशः ब्रिटेन और हिंदुस्तान के राष्ट्रवाद का संकेत कर रहा है जिसमें राष्ट्र का गौरव महिमातथा अखण्डता का आधा वर्णन किया गया है ब्रिटेन के राष्ट्रवादी भावना में विदित शब्द लंदन है तथा भारत का हिंदुस्तान में। अनुवादक काव्य का अनुवाद ऐसे में कर भी दे किंतु राष्ट्रवाद का अनुवाद असंभव है। क्योंकि राष्ट्रवाद एक भावना है ये भावना प्रत्येक देश की जनता की निजी भावना है।

इसी तरह दारुवाला के कुछ ऐसे मिथकों का प्रयोग काव्य-सौंदर्य को बरकरार रखते हुए किया है जिसका अर्थ हर संस्कृति के लोग अपनी संवेदनात्मक अनुभूति जैसे – 'विंटर व्यू' कविता में प्रयुक्त शब्द 'रेन गॉड, ग्रास गॉड, क्लोवर गॉड, ये शब्द किसी एक संस्कृति के दैवीय वैशिष्ट्य को नहीं दर्शाते बल्कि हर संस्कृति के अपने मिथकीय मानदण्डों पर भी खरे उतरते हैं। हर संस्कृति के दैवीय -स्वरूप इन शब्दों में सहज ही समा सकते हैं या फिर 'द वर्ल्ड ऑफ जॉर्ज कीट कविता में ब्लू गोपाल, चेरब, या इनवोकिंग द गॉडेस कविता में 'कार्तिकेय, शिव,

पार्वती, महादेव आदि पात्र काव्य के प्रतीक भी हैं और किसी न किसी संस्कृति की पहचान भी है।

दूसरी बात अनुवाद में जातीयता पूरी (शिद्दत) नवीनता के साथ किसी भी भाषा में मौजूद होती है। चाहे किसी भी भाषा की हो उसमें कौमियत ही अपनी संस्कृति की पहचान होती है। और अनुवादक के पास ही यह हुनर है कि वह किस सलीके के और काइदे से एक भाषा की कौमियत, को दूसरी भाषा में तब्दील करें। तभी संभव है किसी भी भाषा का निष्पक्ष अनुवाद। और दो भाषा की कौम, मजहब, संस्कृति के बीच रागात्मक संबंध व साहचर्य। मसलन – 'इंकलाब जिंदाबाद' इसमें 'इंकलाब' अरबी का शब्द है और 'जिंदाबाद' फ़ारसी का। जबकि इसे हिंदुस्तानी संस्कृति और तहजीब ने एक जज़्बे से उसी सूरत में स्वीकार किया। न कि उसका अनुवाद करके उसकी रूहानियत को खत्म किया। अनुवाद के दौरान कई मामलों में बिल्कुल वही जज़्बात संभव नहीं। सरफरोशी की तमन्ना... कहते ही हमारी जेहन में एक बलवाले (जोश) की लहर दौड़ जाती है जज़्बात के आबसार जो फूट पड़ते हैं। अनुवाद में इसे बनाए रखा जा सकता है? अनुवाद में इसके मुकाबले बिल्कुल विरुद्ध असर होता है। अनुवाद में यह बहुत हद तक मायने रखता है कि किसी भी मुल्क या वतन की भाषा के जज़्बात और संस्कृति को विश्वसनीयता अंदाज में तब्दील किया जाए। अनुवाद दो भाषा के बीच खुले तरीके से 'कलेक्ट' करने का प्रयास है।

मसलन 'कुरान' को अनुवाद के तौर पर प्रस्तुत करना गैरवाजिब है। क्योंकि यह शब्द नहीं एक कौम की खास संस्कृति है। और संस्कृति की रूह में रंग आमेज (नक्काश) होती है। 'कुरान' तक पहुँचने का एकमात्र ज़रिया उसकी मूल भाषा ही है। आखिर अनुवाद के लिए एक मुश्किल को खत्म करने की क्या कोई भाषा सांकेतिक प्रणाली बन सकती है? इसी तरह 'मुल्क' और 'वतन' का अनुवाद अंग्रेजी में सिर्फ 'कंट्री' है। जबकि दोनों शब्द के मायने हमारी संस्कृति में अलग-अलग हैं। मुल्क अपने क्षेत्र की पहचान को दर्शाता है। और 'वतन' तमाम मुल्कों की एक संस्कृति, तहजीब, कौमियत की एकता को महत्व देता है। अनुवादक की मुश्किल यही है कि वो किस मायने का हिमायती है। यह अनुवादक का अपना ख़्याल है। जबकि अंग्रेजी में 'मुल्क' और 'वतन' को 'कंट्री' कहते ही उसकी रूह मर जाती है।

'मुल्क' एक 'फिजीकल टर्म' है और वतन एक 'इमोशनल टर्म' है। दोनों के इस फर्क पर अनुवादक की गहरी निगाह होते हुए भी यह खासी मुश्किल भरा है ।

एक अनुभवी और मुकम्मल पूर्ण दो जुबानी अनुवादक अक्सर ऐसी मुश्किल से जूझता है। "इस अनकहे का अनुवाद कैसे किया जाए? यही अनुवादक का प्रश्न है। हम पाते हैं कि मानव मात्र के मन से उठने वाले भावों – दुःख, प्रेम और करूणा के अनुभवों के बीच एक दूसरे से बस हल्का-सा अंतर होता है। शब्दों में उन्हें अलग-अलग परिभाषित करना असंभव है। हम या तो उन्हें व्यापक अर्थ में कह पाते हैं या फिर प्रतीक अथवा रूपक के द्वारा बताना चाहते हैं। दोनों दशाओं में उनका बहुत कुछ अर्थ अत्यक्त रह जाता है।"[15]

इसकी एक वजह तो यह है कि मुकम्मल दो जुबानी इंसान कोई नहीं है। क्योंकि एक भाषा 'इंटलेक्चुअल भाषा' होती है। जो दिमाग की पैदाइश है दूसरी, जज़्बाती भाषा अर्थात मातृभाषा। उसकी फितरत ही उसका जज़्बात होती है। जो व्यक्ति अंग्रेजी से ताल्लुक रखता है, अंग्रेजी पर प्रवीणता हासिल है। बावजूद इसके लक्ष्य जज़्बाती भाषा को वह अपनी इंटलेक्चुअल भाषा में उसी सूरत में तब्दील नहीं कर सकता। यह तभी मुमकिन होगा जब वह दो जुबानी भाषा को ख़ैराबाद करने में सक्षम हो। मसलन – 'खोया-खोया चांद भीगा आसमां' यह एक ही भाषा का एक ही जुमला है। इसको एक व्यक्ति 'टेलीविजन स्क्रीन' पर देखता है तो उसकी निगाहों में चांद और चांद को ढकता हुआ आसमां दिखाई देता है। मगर जिस आदमी ने इस सूरत में न देखा हो तो इसे किस रूप में लेगा? जाहिर है वह मायूसी को इजहार करने के लिए चांद को खोया-खोया मायने में तबदील करेगा। यह तो हुआ एक ही भाषा के बोलने वाले आदमी के अर्थ का अंतर। जरा ख़्याल करें जब एक भाषा दूसरी भाषा में छलाँग लगाती है तो जाहिर है कि अंतर क्या होगा? सही अर्थ का ख़्याल किस रूप में उभरेगा?

यकीनन सांस्कृतिक भाषा के अनुवाद का मसला अनुवादक की पैनी और गहरी नजर पर टिकी है। अनुवादक चाहे तो उसके के असल मायने के तकरीबन – तकरीबन बहुत करीब तक पहुँच सकता हैं बरक्श इसके निगाह में कहीं भी जरा सी गड़बड़ी का एक अंश भी रह गया तो वास्तव में यह मसला भाषा की नासमझी और

जज़्बात के सतही अर्थ तक सीमित रह जाएगा। कुछ इस तरह – अनुवाद के बाद अनुवादक की भूमिका उसी चाहे नक्शब (नक्शब, तुर्किस्तान का एक नगर का वह गार जहाँ से उस समय के प्रसिद्ध वैज्ञानिक हकीम इब्नेमुकन्ना ने एक कृत्रिम चंद्रमा उदित किया था जो चारों ओर बारह-बारह मील रौशनी देता था और दिन को गार में छिप जाता था) की तरह है। जो वास्तविक खूबसूरती और चाहत पैदा नहीं कर सकता। उसका अपना वुजूद भले ही तकरीबन-तकरीबन वैसी ही दुनिया का ताना-बाना होता है। क्योंकि "भाषा प्रयोग से बढ़ती है, भाषा के प्रयोग से संवेदना बढ़ती है, संवेदना के विस्तार से संस्कृति का विकास होता है और संस्कृति समाज के बहुमुखी विकास की धुरी है। आप अफीम के पौधों की खेती कीजिए पर सरसों की प्रजाति को नष्ट न होने दें वरना बसंत आने का आपको कभी पता नहीं चल पाएगा।"[16]

TH-14392

आखिर में यही कहूँगा – सांस्कृतिक भाषा का अनुवाद करते हुए किसी भी भाषा के शब्द और मायने की हिफाजत तो की ही जा सकती है भले ही थोड़ी दुश्वारियाँ क्यों न हों।

Jawaharlal Nehru University Library

शैली के अनुवाद की समस्या :

चाहे कोई भी कृति हो उसमें जो शैली है वह आधार है समूचे जीवन का। आकांक्षा है; जीवन की, प्रतिबिंब है; जीवन का, आचरण का रूपांतरण है, रचनाशीलता का महत्वपूर्ण चरण है, सृजनात्मक मूल्य है, रचनात्मक सौंदर्य है, आभ्यांतर का निखार है, वाह्य का सुरक्षित आवरण है, संप्रेषण का नक्काश है, पृथ्वी से गगन तक की 'नेचुरल ब्यूटी' (प्राकृतिक-सौंदर्य), कृति के अनंत छोरों में है, सुर, लय में समाई, संगीत में बसी है शैली। शैली ही है – पीड़ा की गहनतम अनुभूतियों.. आनंद की असीम ऊचाईंयों तक पल्लवित। संकरी तंग गलियों 'इंद्रिय बोध' से गुजरती राहों 'अभिव्यक्ति'' तक खुली और फैली है, निर्झर झरने कल-कल में है, समंदर की मौज में है, लुप्त किलकारियों में है, असीम ध्वनि में है, परिंदे की उड़ान में है, तरू-शाख में इठलाती हवा में है, गूंजती ध्वनि में है, भीगी-हवा में है, दिशाओं की शिरा में है, चेतना की झंकार में है, निर्वात से समूह तक है, जीवन के नन्हे नुपुरों की छुअन... कांधों की जलन तक है, मौन से परम्, चहंकू से शून्य तक,

चेतन-अचेतन, दृश्य-अदृश्य के गूढ़ रहस्यों में है शैली। निर्जन गुफाओं में बसी, आदि-नाद से निःसीम नीरवता में फैली। पदचिह्न या की मूकता से कदमों की आहट तक 'परम-अभिव्यक्ति' है शैली। हरिवंश राय बच्चन ने कितनी सहजता से कहा "मेरी यदि कोई काया है तो उसकी जड़ें ठोस जीवन की धरती में है', मेरी कोई भावना है तो उसका मूल मेरी भोगी झेली अनुभूतियों में है, मेरी कोई कल्पना है तो उसका स्रोत इंद्रियगम्य-यथार्थ में है, मेरा कोई दर्शन है तो वह इसी गांव के नीचे की पृथ्वी की माटी के स्पर्शन से बना है। वायवी, आकाशी, अतिमानसी स्रोत मेरे लिए नहीं खुल सके हैं।"[17]

बच्चन की स्वप्निल शैली की यही विशेषता है। और यही उनकी संजीदगी और रूमानियत भी है, जो तकातुर है उनके मंसूबे में, रचनात्मक ह्यात में है इस कदर; कि लफ़्ज, संगीत, जज़्बात को तस्कीन है वे महफूज हैं। अमूमन शैली में ही वो कैफियत और खुमार है जिससे कविता में ख़ेज की सी कशिश, दर्या की आद्रता, नीलोत्पल की कमनीयता व रंगीनियत, पीहू की आश्नाई और करार, मोहकता और चित्रमयता, यथार्थ और टकराव मौजूं है, यकीकन शैली की नजरफरेबी उसकी काफ़िरी या ख़लीफाई है, जिसमें सारी कुद्रत और कायनात की मुश्ताक आमदरफ़्त है। सारी जमात का मज्मून है शैली जो सार्वजनिक स्थान की गुजरगाह से जनता के उददे्श्य की हकीकत की हिमायत और दीदबान करती है।

जहाँ तक ताल्लुक है शैली को करीब से जानने का। मेरे ख़्याल से हर भाषा की सुरक्षात्मक ढाल है मेरी ख़्याल से हर भाषा की। बावजूद इसके शैली में ही वह 'मस्ती' है जो और कहीं शायद नहीं। "मस्ती का अर्थ है जागृति, जागरूकता, जीवतंता, निर्भीकता, साहसिकता, खतरा उठाने का जिगर, कुछ कर गुजरने की ललक, और परिणाम के प्रति नितांत बेफिक्री।"[18] जहाँ तक अनुवादक के नजरिए का सवाल है उसे यह इल्म हो कि किसी भी भाषा की शैली में अभिव्यक्ति के साधनों की बजाए, अभिव्यक्ति के सहजभाव को पाना बेहद जरूरी है यह भावों की सहजता हर भाषा में मिलती है। किसी भी भाषा में शब्दों के बीच भले ही कोई समानता हो, गोया यह जरूर है शब्दों में बयान हकीकत का अंदाज या शैली में भावों की फितरत तकरीबन एक सी होती है मसलन – प्रेम, क्रांति, विद्रोह, बगावत, देशभक्ति

आदि... यह किसी भी भाषा में लिखे जाएँ किसी भी शैली में दर्ज हों भावों से प्रेम सदैव एक सा होगा।

हर भाषा में रति, शोक, क्रोध, उत्साह आदि भाव-तत्व एक से हैं बशर्ते इन्हें अभिव्यक्त करने का लहज़ा, शब्द, बिंब, प्रतीक, कल्पनात्मक ज़रिया भले ही इतर हो।

यह सारी चीजें मिलकर रचना में भावों का सहज-संप्रेषण करती हैं। एक भाषा से दूसरी भाषा में वाक्य-संरचना का भाव-तत्वों के साथ तादात्म्य की स्थिति, (की प्रक्रिया) एक गहरे तनाव में होती है। किंतु शैली में स्पंदित करने की चस्क है, जज़्बा है, जो रूपायित होती है भाषा के भीतरी हिस्से में एक गहरी अनुभूति को चस्पा किए हुए; बयान होती है शब्दों के पैबंदों में, गहरी होती तीक्ष्ण हीरे की बर्कदम उजली छाया सी और वाक्य-संरचना की अंदरूनी दुनिया की तमाम खूबसूरत दशाओं को रससिक्त करती हैं

हर संस्कृति और भाषा की अपनी जमीं की उपज है शैली। वो जमीं जहाँ संस्कृति और भाषा शैली की वजह एक खास अंदाज में शब्दों में बयान होती है। मसलन 'मेघाली' एक ही संस्कृति का शब्द है। मगर अलग-अलग कस्बे में इसके तब्दीलेसूरत बरखा, ... आदि शब्द कविता में एक ही ऋतु का वर्णन अलग-अलग अंदाज में करते हैं। वाक्य संरचना में जो शब्दों की तारतम्यता है उसके अर्थ पर निर्भर करती है शैली; यही खासियत है । मसलन – "झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर/राग-अमर! अंबर में भर निज रोर/ झर-झर-झर सिर्झर-गिरि-सर में/ घर, मरु-तरु-मर्सर, सागर में।" निराला की इस कविता में तुक, लय, छंद, बिंब, प्रतीक शब्दों के साथ इस कदर एक-दूसरे से गुंथे हैं कि एक भी शब्द का निश्चित जगह से रद्दोबदल होते ही पूरी काव्यात्मकता और संगीतात्मकता खत्म होने की पूरी गुंजाइश है।

अनुवाद के दौरान शैली को लेकर जो दुश्वारियाँ हैं। पहली बात, जिस अंदाज में वह काव्य को ढालती है। उसी अंदाज में लक्ष्य भाषा उसे जज़्ब करने से कतराती है। इसके अपने कारण भी हैं, मगर ऐसी हालत में लक्ष्य भाषा का

गैरजज़्बाती होना क्या उचित है? यकीनन दुश्वारियाँ हैं – "तुक और छंद बचाने हों तो बिंब बदल जाते हैं या बिंब बचाने के चक्कर में लय बदल जाती है।"[19]

इस दशा में प्रत्येक भाषा की ध्यात्यात्मक शैली (Style of sound) की गहराई से पड़ताल प्रभावोत्पादक अंशों की काट-छांट और उभार, निचलेस्तर के लफ़्जों की तारतम्यता और झुकाव, लयात्मकता की खींचतान, बिंबों की बुनावट और वाक्य - संरचना की कसावट को इस अंदाज में बयान करना कि वह वास्तविक कृति की हम शक्ल न लगे बल्कि शीरत या रूह को भी आत्मसात करे। वास्तविकता से भी अधिक या तो उसकी रूमानियत और खिंचाव विश्वसनीय लगे। क्योंकि वास्तविक कृति की 'नेचुरल-ब्यूटी' की एक वजह उसकी अपनी शैली की गहराई और खूबसूरती है।

कविता की गहराई, स्थिरता, प्रवाह, संबोधन उसकी भाषा के जज़्बातों का संस्कार है। जिसके साथ लक्ष्य भाषा के तादात्म्य की जरूरत है। जज़्बातों के साथ तादात्म्य की स्थिति में ही संभव है शैली के आभ्यांतर की पहचान। इसके पश्चात ही वास्तविक रचना को आत्मसात किया जा सकता है। यह तादात्मय और आत्मसातीकरण की प्रक्रिया में शैली के साथ रागात्मक संबंध की स्थिरता और शिथिलता के अभाव में रचना अपनी रूह खो देगी। और खूबसूरती की गुंजाइश खत्म हो जाएगी। इसीलिए शैली ही रचना में जीवन की कला एवं सौंदर्य (Art & Aesthetic) को स्पंदित करती है। वह किसी भी भाषा का कलाम और रचना की 'क्लासिकी' है। जिसमें कलात्मक यौवन और सौंदर्य की मधुरता, तबस्सुम है उसका। दूसरे शब्दों में कहें तो रचना की नाजुकी और नजाकत की शिगुफ्तगी और पल्लिवत मृदुता शैली में ही सयानी होती है।

कई बार शैली में समाए छंद अनुवाद के दौरान भाषा और जज़्बात की समरूपता और तमाम मुश्किलों से भरे प्रतीत होते है। मुमकिन है ऐसी स्थिति में अनुवादक को अनछुई शैली की सौम्यता और प्रगल्भित यौवन को बचाने के लिए मुक्त-छंद का सहारा लेना पड़े। अनुवादक अनेक दफा छंदों की मोहकता में बंधा नहीं चाहता 'छंदों का अतिक्रमण' न ही बहिष्कार, छंदों की कमनीयता में उलझकर वह रचना की तमाम जिम्मेवारियों को भूल बैठता है और रचना की नाजनी (लावण्य)

को तुरंत खो देता है। जबकि मुक्त छंद में संभवतः रचना का परिष्कार, सीमित दायरे का विस्तार हो सकता है। निराला की यह पंक्तियाँ कितनी सटीक बैठती हैं – मैंने मैं शैली अपनाई/ देखा निज दुःखी भाई/ दुःख की छाया पड़ी हृदय पर/ निकल वेदना बाहर आई। सोचिए जिस कवि की भावना ऐसी होगी। उसकी शैली कैसी होगी। दूसरी तरफ मुक्तिबोध जैसे गंभीर कवि की पंक्तियाँ अभिव्यक्ति के खतरे उठाने ही होंगे/तोड़ने ही होंगे मठ और गढ़ सब। क्या संभव है जैसी अजीबोगरीब शैली की फितरत का लक्ष्य भाषा में अनुवाद? शैली के अनुवाद में यह दुश्वारी वाजिब है भी। वजह है शैली हर भाषा को चाक पर रखकर उसे सुडौल आकृति में ढालती है अपनी फितरत के अनुरुप। ताकि उसे विश्वास हो सके वह महफूज है।

शैली अखंड दृष्टि है – रचना में समायी रहस्यों और कवाइदों को जानने, देखने की। जिसमें कुछ भी निषेध नहीं है। और कुद्रत व कायनात की हकीकत उसकी अनुभूति व अनुभव को आत्मसात किए जीवन शैली को करीनेदार व जायकेदार बनाती है। यही वजह है – "शैली की विशेषताओं को सुरक्षित रखने के संदर्भ में अनुवादक को मूल रचना के लेखक विशेष की व्यक्तिगत शैलीगत विशेषताओं की ओर विशेष ध्यान देना पड़ता है।"[20]

सुरेश सिंगला ने शैली की जिन समस्याओं की चर्चा की है वे इस प्रकार हैं– "1. चयन की समस्या– शब्द के स्तर पर ध्वनि के स्तर पर, कथ्य के स्तर पर, और रूप के स्तर पर; 2. विचलन की समस्या – शब्द के स्तर पर, पद के स्तर पर, वाक्य के स्तर पर; 3. प्रस्तुत योजना के संदर्भ में समस्या; 4. समानांतरता के परिप्रेक्ष्य में समस्या; 5. ध्वन्यात्म के बलाघात के रूप में समस्या।"[21]

रचना और रचनाकार के बीच रागात्मक संबंधों की नजदीकी उसकी शैली में समायी होती है। बच्चन का कथन है "मैं बोला जो मेरी नाड़ी में डोला, जो रग में घूमा।"[22] शैली रचनाकार के अंतस्तल में निहित है और रचनाकार शैली को भीतर ही जीता है। कृतिकार की महान 'धारणा' है शैली। शैली के कृतिकार की 'धारणा' कहने का तात्पर्य है – दृश्य, दृष्टा और इन दोनों के पार इन तीनों को याद रखना। यही धारणा हैं इसी में संभव है बियांड, पार के भी पार हो जाने और सब

कुछ को देखने की दृष्टि। अनुवादक के समक्ष जो मुश्किलें हैं पहली बात; अनुवादक को अनुवाद करते हुए रचना में समाए तमाम विषयों की ओर ध्यान एकाग्र करना पड़ता है यह एकाग्रता है संकुचित होने का भाव। वह रचना के भीतर तमाम विषयों के बीच से होकर गुजरता है जहाँ अनेकानेक विषयों का दबाव और हलचलें हैं, उत्तेजना है। अनुवादक उनसे उलझता है और विचारों की गुत्थी में उसकी मानसिकता खंड-खंड में टूटती है। अनुवादक विषय की मूल धारणा से भटककर तमाम विषयों की अनंत दिशाओं में भ्रमण करता है। जिसके कारण अनुवाद में विक्षिप्तता की दरार आना स्वाभाविक है। क्योंकि तमाम दिशाओं में खींचातान से सब कुछ का अधूरापन ही उसे मिल पाता है और अनुवादक की अस्त-व्यस्त ऊर्जा एक भंवर, हलचल जिसमें दर्दमंद, आहत अनुभूतियों के कुछ नहीं मिलता। यह उसके मन की साधारण अवस्था है। जिसमें इतने विषय के बीच भटकाव के कारण वह रचना की कला और सौंदर्य जो शैली में निहित है उस तक नहीं पहुँचता है।

दूसरी बात; शैली में जो (Style of Sound) ध्वन्यात्मक शैली है उस तक पहुँचने के लिए एक प्रक्रिया है जो वास्तव में रचनाकार के अंतस्तल में फूटती है उसके अस्तित्व में, चेतना में। चेतना जो अनिर्वचनीय है फिर भी चेतना की निर्वचनीयता है शैली। उस तक पहुँचने के चार आधार स्तंभ हैं – 1. जाग्रत होना, 2. समस्वरित होना, 3. मस्ती में जीना, 4. करुणापूर्ण होना।

अर्नाल्ड ने जिन शैलीगत विशिष्टताओं को सुरक्षित रखने की चर्चा की है वे हैं – "प्रवाहमयता (Repity); 2. सरलता और स्पष्टता (Plainness and directness); 3. शैली और शब्दावली (Style and diction) 4. विचारों का सार (substance of thought); 5. वाक्य-विन्यास (syntax); 6. उदात्तता (Nobility)"[23] इस प्रकार की पूर्णता के लिए अनुवादक की सजगता चाहिए। आंतरिक सजगता, जो घटती है अहं के भाव का विसर्जन होने पर। यह एक दुर्लभ क्षण है, जहाँ अनुवादक को रचनाकार की भाँति 'आत्म' से विस्मृति में जीना पड़ता है, समस्वरित होकर। वहाँ बहती हुई चेतना का प्रवाह है।

अनुवादक की चेतना कृति की चेतना का केंद्र भेदकर वहाँ परिभ्रमण करती है यह सहज नहीं है इस अवस्था में तीसरी संभावना घटती है अनिवर्चनीयता या मस्ती

में जीना। शब्दों के पार जहाँ बिल्कुल अलग दुनिया का ताना-बाना है। और अंतिम शिखर है करूणा। उस क्षण जिसमें वो प्रवेश करता है एक आनंद की दशा में घटती है करूणा अंर्तजगत में। यह एक तार्किक निष्पत्ति है जहाँ शब्द और मायने खुद-ब-खुद अनिर्मित दुनिया को आकार देते हैं यह एक असीम फलक है अनुवादक के लिए यह चरण अत्यंत जटिल व दुश्कर है। ऐसा इसलिए है कि विषय इतने अधिक हैं अनुवादक उनमें फँसकर अनुभूति की संकरी अवस्था में जीता है पूर्ण एकाग्रता को भूल बैठता है। हर विषय निरंतर अपनी ओर खींचते हैं मन उन्हीं में समा जाने की विवशता से भरा होता है। पूर्ण एकाग्रता में अनुवादक तभी जी सकता है जब रचना के भीतर वह चित्त की आठ अवस्थाओं से भली-भाँति परिचित हों और उनके बीच से होकर गुजरे। सृष्टा, दृष्टा और भोक्ता के संबंध को रचना में समझ सके। ध्यान्यात्मक शैली (style of sound) को जज़्ब कर सकें। उसे यह अनुभूति हो कि किस अवस्था में रचना को संपूर्णता में अनुभव किया जा सकता है ताकि वही अनुभव और अनुभूति एक धारणा के रूप में घटित हो जिस प्रकार रचनाकार और रचना में समाहित शैली के भीतर एक-एक इंद्रिय एक-एक मन है और मन की अवस्था – पांच चित्त की अवस्था और पांच इंद्रियों की अवस्था से बंधी है यही अवस्थाएँ अपनी एकाग्रता में विषय, विचार, शैली तथा रचनाकार की मानसिकता का निर्धारित रूप तैयार करती हैं। "शैली के अनुवाद में अनुवादक को रचनाकार की मानसिकता से जुड़कर चलना होता है उससे तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है अनुवादक के द्वारा मूल रचना की शैलीगत विशेषताओं की उपेक्षा करना अंततः अनुवाद की हत्या ही है।"[24]

शैली रचनाकार के चित्त और इंद्रियों की अनुभूति, भाव, विचार, कल्पना का उद्‌बोधन और उसकी छाया है। ये छाया में लय, छंद, प्रवाह, संगीत आदि के रूप में उभरती है। आरंभिक अवस्था में ये छवियाँ रचनाकार की स्मृति-रेख की एक झिंझली परत के रूप में होती है। ये शैली का हिस्सा तब तक नहीं बनते जब तक रचनाकार के मन की अवस्थाओं के साथ पूरी तरह घुल नहीं जातीं। यह एक जटिल संश्लिष्टता का तल है। एक तरल संरचना जहाँ सारी अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ झिलमिलाती हैं। झिंझली पर्तों के भीतर इस बुनावट के पीछे रचनाकार की भाषा, तहजीब, दस्तूर होते हैं।

और होती है – अंतर्दृष्टि। अंतर्दृष्टि यानि देखते रहना सब कुछ को घटते साक्षी बने। शैली में सारी अनुभूतियाँ भीतर क्षण मात्र को ठहरती हैं फिर वापस घुल जाती है इंद्रियों और चित्त की तमाम अवस्थाओं के भीतर। फिर वापस आती है तमाम भाव, विचार, कल्पनाओं के साथ। फिर वही ठहराव क्षणमात्र और फिर घुलने की प्रक्रिया। यह एक वर्तुलाकार परिभ्रमण है। रचनाकार निरंतर सिर्फ देखता है सब कुछ हो साक्षी हुआ। यहाँ होता है स्मरण। वो (सृष्टा) मन पर पड़ी तमाम छायाओं को खींचकर चित्त और इंद्रियों से बाहर निकाल जाता है। और उसे अपनी खंडित विखंडित रूप में शैली की निर्मिति करता है। जागृति के द्वार यही से खुलते हैं। इस अवस्था में रचनाकार स्मृतिपूर्वक एक जाग्रति में जीता है। यही है रचनाकार की अंतर्दृष्टि। और शैली है धारणा।

यह अंतिम संश्लेष तभी घटता है जब चित्त और इंद्रियों में अनुभव और अनुभूति के साहचर्य से शैली अपनी एक खास आकृति में ढलने लगती है और समस्त भाव उस आकृति के विभिन्न आयाम और अंग बनने लगते हैं। चीजें रचनाकार के भीतर से निकलकर फूट पड़ती हैं संवाद करने के लिए सृष्टि में और रचना हिस्सा बन जाती है हमारी दुनिया के सत्यों के उद्घाटित होने का पूर्णतः का शैली दुनिया की आंतरिक-खिलावट बन जाती है।

तीसरी बात, यह सारी प्रक्रिया अनुवादक के लिए हरगिज सहज नहीं है जो रचना में उपस्थित है वह स्वाभाविक प्रक्रिया है और जो अनुवादक का प्रयास है वह एक बाहरी घटना है सायास एक आंतरिक अनुभूति। सारी ऊर्जा, सौंदर्य, गुणवत्ता, आंतरिक यौवन को दुहराकर देखना। वहाँ भी काव्य है, सौंदर्य है मगर शारीरिक। आंतरिकता की गहनतम अनुभूति गौण है। शारीरिक सौंदर्य सांयोगिक है। वह अनुवादक के सांयोगिकता पर उसकी समूची चेतना पर निर्भर है। वह आंतरिक संयोग नहीं है। अनुवादक के लिए यह स्वच्छंदता बहुत हद तक नैसर्गिक हो सकती है क्योंकि वह क्षणमात्र को पूरे काव्य के भीतरी जगत में बिना प्रतिरोध के होती है। किंतु मूल्यवान नहीं होती जो रचनाकार के भीतर शैली तक पहुँचने का मार्ग है वह आंतरिक घटना, सौंदर्य है, काव्य की आत्मा का सौंदर्य करूणा के रूप में अभिव्यक्त होता है जो सुंदर रचना अपरिहार्य रूप से करूणा के मद से भरी होती है । उसमें कठोरता नहीं होती, बरक्श इसके अनुवादक अनेक जगहों पर कुरूपता और कठोरता

को काव्य की करूणा के रूप में देखता है। करूणा कृति की आंतरिक यौवन की छाया है। जो अनुवादक के पास है वह है वाह्य करूणा, वह शैली का आंतरिक सौंदर्य की छाया नहीं हो सकती।

चौथी बात, लक्ष्य भाषा के लिए यह संश्लिष्ट छाया कभी भी बिल्कुल साफ नहीं हो सकती क्योंकि "शैली तो प्रत्येक रचनाकार की निजी वैशिष्ट्य हुआ करती है शैली के माध्यम से ही रचनाकार का शील अर्थात् 'व्यक्तित्व' साहित्य में बिंबित होता है।"[25] अनुवादक शैली की इस विशिष्टता में भाव को उजागर नहीं कर पाता तो जो भव उसके अनुवाद में जागता है वह मात्र 'फेसेस ऑफ डेथ' है सारे भाव मरे हुए हैं। सुसप्त हैं, निर्जीव हैं – प्राणहीन हैं उसमें प्राणों का संतुलन खो सा गया है। शैली की आंतरिक खिलावट, रचना में समायी चेतना विस्मृत हो चुकी है। और जो सूरत उभरी है वही है मृत भावों के विभिन्न चेहरे। जो कृतिकार की सृष्टि है वो जीवित फूल की तरह है और अनुवादक की कृति मृत चट्टानों में टकराती हुई फूल की करूणा की तरह है।

पांचवीं बात, हर भाषा दुहरे व्यक्तित्व में जीती है एक मायने जो बाहरी दुनिया का सत्य है दूसरा जो आंतरिक सत्य की खोज है और भाषा जब काव्य में शैली के रूप में एक निश्चित आकार ग्रहण करती है तो वह कई अर्थों को एक साथ ग्रहण करती है जहाँ दर्शन, आध्यात्म, गहरी अंतर्दृष्टि और तमाम दुनिया के रहस्य उसमें समाये होते हैं शैली में ही प्रत्येक भाषा और शब्द, संस्कृत, व्यक्तित्व रहस्य की कुंजी छिपी होती है। कृति की संपूर्णता में अनुवादक चाहे तो उस कुंजी का साक्षात्कार कर सकता है मगर कुंजी में छिपे रहस्यों तक वह पहुँच नहीं सकता। क्योंकि न चाहते हुए भी शैली का स्वरूप, आकृति, बदल जाती है। यह बदलाव स्वाभाविक है भी। आंतरिक सौंदर्य और बाह्य करूणा के बीच वह अंतर्दृष्टि है जो शैली में अभूतपूर्व सत्यों उसकी शास्वत्ता का संचय है। जबकि अनुवादक की करुणा और सौंदर्य उसे मन और अंर्तजगत में समायी अंतर्दृष्टि सांयोगिक है। यही सांयोगिक शब्द वाक्य, पद, ध्वनि, उपयुक्त विधान, समानांतर परिप्रेक्ष्य, कथ्य, रूप, आदि स्तरों पर बाह्य दुनिया में संबंध स्थापित करती है। सब कुछ वैसा ही है किंतु आंतरिक संरचना के परिवर्तित स्वरूप में, सांयोगिकता जहाँ शैली का जन्म होता है नहीं, अनुवादक जन्म लेता है, शैली का आंतरिक सौंदर्य रचनाकार के अंर्तमन जगत

के केंद्र में घटता है वहाँ असीम करूणा से भरी दुनिया का ताना बाना है। जो अनुवादक की करूणा है वह कठोरतम है। करुपता है, जहाँ विकृतियाँ हैं जीवन का सौंदर्य अपरिचित है क्योंकि उस दिशा में कोई प्रयास, कोई साधना, कोई कदम नहीं रखा गया, अनुवादक के लिए शैली का मतलब है, "जिंदगी क्या है? किसी मुफलिस की कज़ा है; जिसमें हर घड़ी दर्द के पैबंद लग जाते हैं।"

जबकि रचनाकार के लिए शैली है – 'जीवन की हर धूप, हर छांव में आनंदित रहने की कीमिया', "अच्छा अनुवाद प्रस्तुत करने के लिए अनुवादक को मूल रचना के कथ्य और शिल्प की विभिन्न विशेषताओं को आत्मसात करना चाहिए। उनके अनुसार अनुवादक और मौलिक रचना के मध्य भावना, चिंतन, भाषा और अभिव्यक्ति के स्तर पंर कुछ अवरोध हुआ करते हैं जिन्हें अनुवादक मूल रचना को आत्मसात किए बिना दूर नहीं कर सकता। आत्मसात करने की यह स्थिति पारदर्शी स्थिति के समान है जिसमें अनुवादक मूल रचना के आर-पार देख सकता है। मूल रचना को आत्मसात न करने की स्थिति में कई प्रकार की त्रुटियाँ उत्पन्न हो जाती हैं"[26]

अनुवाद करते हुए अनुवादक शैली का वाह्य प्रेक्षण (outside projuction) करता है यह काफी खतरनाक स्थिति है यहाँ अनुवादक की अपनी अक्षमता कहाँ से आती है? इसके पीछे जो बड़ा कारण है। शब्दों के साथ सिर्फ उसकी दूरियाँ ही नहीं हैं बल्कि रचनाकार की मानसिक स्थिति को भेदने की जरूरत है, जहाँ पर रचनाकार की जो दुनियावी फितरत (लाइफ वर्ल्ड) है वह उसकी मानसिक स्थिति पर निर्भर है। एक तरफ तो भाषा दो अलग-अलग दुनियावी फितरत के लोगों को मिलाने का माध्यम है वहीं दूसरी तरफ दोनों की अलग-अलग चेतना की, मानसिकता उनके बीच दूरियाँ बनाती हैं। क्या वजह है कि भाषा हमारे क्रिया-कलाप से जुड़े होने पर भी अनुवादक उसे उसी धरातल पर नहीं दख पाता है? इसके पीछे दो महत्वपूर्ण कारण हैं – एक; रचनाकार और अनुवादक के अंदर उसके सामाजिक परिवेश के साथ-साथ उनके सांस्कृतिक बिंब और प्रतीक हैं वे एक-दूसरे से भिन्न और अलग-अलग अर्थ एख्तियार किए हैं। यह हमारे (रचनाकार और अनुवादक) जीवन के दायरे को दर्शाते हैं। इसके पीछे हमारे 'इंटेंशन्स' इरादे क्रियान्वित हैं। ये

इरादे ही मन का निर्माण करते हैं। वो जीवन के कौन से तत्व हैं जिनके साथ जो इनके मन का निर्माण है वो निर्माण उनके जीवन की गतिविधियों से जुड़ा है। सवाल यह उठता है कि अनुवादक की सार्थकता ऐसे में कहाँ तक उपादेय है? क्या इस स्थिति में उसके किसी भी कदम को सार्थक माना जा सकता है? जबकि दो भाषाई दीवार को मिलाने का आधार एक भाषा ही बनती है। एक भाषा की परिपक्वता में ही यह बात समाहित है कि दूसरी भाषा जो उसके साथ संपर्क बनाए है वह कितनी परिपक्व है। दूसरी भाषा उस भाषा की परिपक्वता निर्धारण करती है। यह भाषा की उपलब्धि के नजरिए से बेहद जरूरी है जो अर्थ को सार्थक बनाती है।

एक तरफ तो शैली प्रत्येक रचनाकार की अपनी-अपनी है लेकिन दूसरी तरफ वह एक दार्शनिक आधार को लिए होती है क्योंकि रचनाकार की शैली चाहे कितनी ही व्यक्तिगत क्यों न हो उसका एक सामाजिक, सांस्कृतिक आधार होता है दूसरी बात – रचनाकार की कोई भी रचना चाहे कितनी ही व्यक्तिगत क्यों न हो लेकिन वह अपने साथ अपने खास भाषाई विकास के साथ पूरे सामाजिक आधार से जुड़ी होती है जहाँ से रचनाकार अपने आप को समाज के साथ जोड़कर देखता है। यहीं से रचनाकार की सामाजिक, मानसिकता का विकास अपनी मानसिक विशिष्टताओं के साथ होता है। और यहीं पर हम रचनाकार और शैली को सामाजिक आधार से जोड़कर देख सकते हैं। रचनाकार की दुरुहता उसकी व्यक्तिगत दुरूहता नहीं बल्कि वह हमारे आस-पास की सामाजिक, भाषाई दुरूहता को दिखाती है। रचनाकार जहाँ किसी कारण का अंतिम कारण जानना चाहता है जो उस खास भाषा की अवधारणा के साथ जुड़ा होता है जिसका कोई 'मिटाफिजिकल' कारण उस अवधारणा के साथ जुड़ा होता है वह कोई ऐसा कारण नहीं ढूंढता जिसका कोई भाषाई आधार हो। कोई एक 'स्प्रिचुअल' कारण तलाशती है जहाँ कोई अंतिम आधार हो सत्य को जानने का। यह आधार वास्तव में भाषा ही है जो चेतना की निर्मिति करती है। चेतना की निर्मिति का और कोई आधार नहीं है अनुवादक की मुश्किल यह है कि वह चेतना के आधार पर तो जुड़ सकता है लेकिन भाषा का अंतर उसे रचनाकार की चेतना से अलग करता है। चेतना जब भी बनती है वह, 'कलेक्टिव' ही होती है, 'इंडिविजुअल' नहीं होती। जबकि चेतना के साथ जो मन है वह व्यक्तिगत होता है 'कलेक्टिव' नहीं। लेकिन चेतना व्यक्तिगत नहीं हो सकती।

मन सदैव मनोवैज्ञानिक कारणों पर आधारित है इसका अर्थ है, वह व्यक्तिगत है। इसलिए रचनाकार और अनुवादक के बीच जो दूरी है वह मन के आधार पर है, न कि चेतना के आधार पर। दूसरी बात जो रचनाकार की अंतःप्रज्ञा है क्या वो अनुवादक के लिए भी वैसी ही अनुभूति हो सकती है।

आखिरकार रचनाकार और अनुवादक के बीच गहरी अंतदृष्टि का अंतर है जिसके कारा शैली के अनुवाद में अंतर, बदलाव, परिवर्तन स्वाभाविक है। रचनाकार की शैली महामुद्रा का आलम्बन है जो शब्दों और प्रतीकों के पार है, प्रामाणिक और निष्ठावान है, गहनतम केंद्र है। रचनाकार के अंतस्तल में यह घटना अकस्मात ही घटती है – यह अंतिम घटना, अंतिम भंगिमा, महान भंगिमा। जिसके पार कुछ भी संभव नहीं है और अनुवादक के भीतर यही घटना सांयोगिक रूप से घटती है। इन दो पक्षों के बीच होती है – शैली की तमाम समस्याएँ।

बिंबों के अनुवाद की समस्या

"बिंब अभेद्य और मायावी होता है हमारी चेतना पर और, कि जिसे रूपाकृत करना चाहता है उस यथार्थ संसार पर निर्भर रहता है। इस ब्रह्मांड की समग्रता को हम ग्राह्य नहीं कर सकते, लेकिन काव्यात्मक बिंब उस समग्रता को अभिव्यक्त कर सकता है।"[27]

वस्तुतः बिंब जीवन का सत्य, सत्य की अनुभुति और सत्य के पार के भी पार का सत्य अर्थात् जीवन का आत्म-साक्षात्कार है। बिंब सत्यातीत या सच से परे होता है। वृक्ष की कुछ शाखाएँ हैं जो जड़ की तरह होती हैं ज़मीन के भीतर वे भी वस्तुत वृक्ष की शाखाएँ ही होती हैं। वृक्ष का एक जीवन ज़मीन को अपने अस्तित्व में अंगीकार किए रहता है। दूसरा जीवन, आकाश तक फैला होता है। असीम से असीम, अनंत फलक को जड़ों ने पाश में बांध रखा है। बिंब रचना का आधार और आकाश दोनों ही हो सकता है – यह रचनाकार की दक्षता पर निर्भर है कि वह उसे कितनी अहमियत देता है।

बिंबों में छिपा सत्य कभी शब्दों में नहीं बंधता। इसलिए बिंब जितना गहरा होगा, रचना का स्वर उतना ही गंभीर और उतना ही निःशब्द होगा। रचनाकार की

विवशता है कि जब भाव शब्द नहीं बन पाते, शब्दों के पार चले जाते हैं और सारे विचार, सारी कल्पना, सारे भाव बिंब बनकर उभरते हैं। शब्द जो रचना-संसार गढ़ते हैं।

भाषा एक सामाजिक घटना है। वह सामाजिक प्रभाव नहीं कुछ भी स्वाभाविक या स्वतंत्र नहीं है, भाषा सांसारिक व्यवहार का माध्यम है, परंपरा है और बिंब इनके आक्रमक प्रतिरोध का भाव न भी हो, तो भी वह व्यर्थ का बोझ नहीं होता, वैसे भी भाषा, बिंब के बाहरी आवरण के पार का आवरण है जिसे बिंब अपने अर्थ की तलहटी में संसर्ग की राह पर असंतुलन के एक छोर पर छोड़ देता है भाषा अड़चन है – सामाजिक बंधनों, में फँसी वह अर्थ को धारण करने के पूर्व ही उस की सीमा तय कर देती है। जबकि बिंब इसके परे है। वह प्रत्यभिज्ञा तक पहुचंते हैं। जहाँ हृदय में सघन प्रेमसिक्त भाव है, बिंब लहरों, भंवर, बवंडर में नहीं पनपते, वे बुलबुले से उभरते हैं। वह घास पर पड़ी बरखा की बूंदों में नहीं, ओस की नम ढलकती बूंद में बसते हैं, जिन्हें सांसों की हवा भी नहीं छूती। वे हृदय में सुलगती चिंगारी में जीते हैं। मगर तभी वे बिंब, भाव हों, सिर्फ भाव। शब्द की सीमा का हिस्सा न बने हों, एक घनी प्रतीति मालूम हों, शब्द तो भावों के छिलके हैं और बिंब भाव की गहनतम अनुभूति सीडी. लेविस के शब्दों में – "The images in a poem are like a series of mirrors... But they are magic mirrors, they do not merely reflect the theme, they give it life and form, it is in their power to make a spirit visible."[28]

बिंब का अस्तित्व शब्द-शून्य है वह शून्य से मौन तक समूचे प्राणों की बूंदों का अस्तित्व है। जहाँ होता है सिर्फ अंतरंग अर्थः वाह्य आवरण से हटा एकदम निश्च्छल। जिसका सौंदर्य स्रोत और उद्‌गम स्थान न ही शून्य-गगन, न स्निग्ध चांदनी, न ही मलयानिल उर, न ही सुरभित श्वास, न अपरूप रूप न रजत-रागिनी... वह हृदय की भाषाा समझता है, नयनों में छाया सा रहता है विमोहित स्वप्न बना। यहाँ शब्द नहीं है समूचे अस्तित्व में घुल जाने का आभास अंतर्निहित है। अनंत रूपों में उसकी गंध, रस जीवन की सरी मधुरिमा छिपी है।

प्रश्न है बिंब की वास्तविक भूमिका क्या है? आई.ए. रिचर्ड्स ने *'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज़्म'* (1934) में लिखा है – "बिंबों की ऐंद्रिक विशेषताओं को

सदा से बहुत अधिक महत्व दिया जाता रहा है बिंब अपनी स्पष्टता के कारण उतने प्रभावशाली नहीं होते जितने किसी मानसिक घटना से और विशेषता संवेदन से जुड़े होने की प्रकृति के कारण। ये प्रभावशाली तभी होते हैं जब कि वे संवेदन के 'अवशेष' या 'प्रतिकृति' होते हैं।"[29] बिंब जो कृति में अभी, बिल्कुल अभी दिख रहा है – शब्द को धारण किए या रूप में। वह वास्तविक नहीं, उसका कुछ भी उस जैसा नहीं जैसा शब्द है। यह सूरत रचनाकार प्रद्त है। बात सिर्फ इतनी है कि बिंब प्रतिक्षण नई-नई सूरतों, आभासों को धारण करता चलता है। जो कभी उसकी वास्तविक सूरतें नहीं है। "मनोविज्ञान में 'बिंब' शब्द का अर्थ है विगत संवेदनात्मक या अवगात्मक (परसेप्चुअल') अनुभव की, जिसका दृष्टिगम्य होना आवश्यक नहीं है, मानसिक प्रतिकृति या स्मृति।"[30]

ब्लिस पेरी ने इसलिए कविता और बिंब को संवेदना बताया है – "The function of poetry in to convey the 'sense' of the things rather than the knowledge of things - and the image were not make of words at all, but were naked sense stimules."[31]

सामान्यतः अनुवादक ऐसे छिपे भावों को शक्लों के बिंबों से रचते हैं। जबकि बिंब की सच्चाई यही है कि वे साक्षात् उपस्थित हो सकते हैं। और भविष्य की चिंता, सत्य का साक्षात् हैं बिंब। जैसा रचनाकार का सत्य होता है उन्मुख, बिल्कुल उस भाँति। बिंब हमेशा रचना में विचार, कल्पना, भाव, बनकर रचना को दुनिया के इस छोर से उस छोर तक, इस पार से उस पार तक की ज़मीन और फलक तक फैले हुए हैं। अनुवादक के लिए यह मुश्किल है कि उस क्षण को हू-ब-हू इस क्षण पा लें। क्योंकि बिंबों की परिधि में जो कल्पनाशीलता सक्रिय और जागरूक है। वह असीम फलक तक है जहाँ झिंझलापन और तरलता है और यही रचनाकार के भीतर उभरी संवेदना और बिंब का सत्य है। थॉमस हॉब्स का कथन है – "New images may be created and pepetual activity may be enriched by the free place of imagination functions."[32] इस कल्पना की भूमि पर बिंब कहीं बहके, भटके, अस्थिर नहीं होते। वे अपनी अवस्था और उपस्थिति की अवहेलना और उल्लंघन नहीं करते। रचनाकार की चेतना में कल्पना और बिंब रचना के अस्तित्व निर्मिति के पूरक हैं। जिनमें तथाकथित अनुभूतियों और अनुभवों की श्रृंखलाएँ समायी हुई हैं। गोगोल के

अनुसार – "बिंब की क्रियाशीलता यही है कि वह जीवन को अभिव्यक्त करे, जीवन के बारे में विचारों या तर्कों को नहीं । वह जीवन उसकी विलक्षणता को व्यक्त, अभिव्यक्त करे। जो मौलिक और अद्वितीय है उसके साथ क्या संबंध? अगर बिंब विलक्षण चीज-सा उभरे तब 'प्रतिरूप में खरा क्या' इस सोच की क्या गुंजाइश"[33] बिंब जीवन की विलक्षणता और विडंबना के संकेतक हैं।

अतः बिंब चाहे कोई भी हो, कैसा भी हो, उसकी ध्वन्यात्मक बिंबात्मकता को महसूस करने के लिए बिंब की चित्तावस्था में उतरना एक स्वाभाविक, जीवंत, प्रक्रिया है। बिंब में जो 'ध्वन्यात्मक-बिंब' है वही बिंब की वास्तविक प्रतिमा है, रचनाकार की चेतना का यथार्थ है, जो जागृत या जागरूक इंद्रियों, संवेगों, आवेगों, उद्वेगों की शिराओं के जरिए ही संभव है।

बिंब के स्वरूप या स्वभाव पर गौर करें तो उसकी कई पर्तें हैं। डा. केदार नाथ सिंह ने बिंब की निर्मिति में जिन प्रश्नों की ओर इशारा किया है वे हैं –

1. सृजन की उस अवस्था में कवि के भीतर कौन-सा सूक्ष्म व्यापार चलता रहता है?

2. पाठक किसी कविता को पढ़कर जब उसकी मूर्त सत्ता (बिंब) को अनुभव करता है तो उसके मस्तिष्क के भीतर कौन सी प्रतिक्रियाएँ होती हैं।

3. किस प्रकार एक शब्दातीत अनुभव बिंब अभिव्यक्ति के स्तर पर शब्द की सत्ता से अभिन्न हो जाता है। तथा किस अंश तक एक मानसिक बिंब, एक अमूर्त मानसिक धारणा से भिन्न अथवा समान होता है।"[34]

इन सभी प्रश्नों का संबंध इंद्रिय-बोध से है जहाँ बिंब के अनंत आयाम छिपे हैं ये हैं इंद्रियों के भीतर छिपे बिंब की धारणा और कल्पना व कल्पनातीत विचरण और सब मूर्त सत्ता पदार्थ रूप में उपस्थित होते है, जिसमें चाह है, गतिशीलता है, लयात्मकता है। और इसी से अनुवादक बिंबों के समूचे व्यक्तित्व के बारे में एकत्रित करता है पदचाप, धुंधलके में छिपे चिन्ह या संकेत। उन्हें आकार देता है जो बिल्कुल भी बिंब की पहचान नहीं करते।

बिंबों की दुनिया हमारी यथार्थ दुनिया से बिल्कुल अलग होती है। बिंबों को जिन रूपों में वस्तुतः देखा गया है –

1. "बिंब एक प्रकार का शब्द चित्र है।"[35]

2. "बिंब वस्तुओं के आंतरिक सादृश्य का प्रत्यीक्षकरण है।"[36]

3. "बिंब ऐंद्रिक माध्यम के द्वारा आध्यात्मिक अथवा तार्किक सत्यों तक पहुँचने का एक मार्ग है।"[37]

4. "बिंब एक अमूर्त विचार अथवा 'भावना' की पुनर्रचना है।"[38]

5. "बिंब दो विरोधी संवेदनाओं अथवा अनुभूतियों का आंतरिक तनाव है।"[39]

अतः बिंब में ही वह शक्ति है जिसमें सार्थक संभावनाएँ छिपी हैं। जहाँ संकोच है वहाँ बिंब की स्वतंत्रता है उनके विरोध में सही दिशा निहित है। उसमें यथार्थ सत्य का स्फुरण, सब कुछ के घटने की स्वीकृति है, विकास है, रूपांतरण हैं। जहाँ अनुवादक के द्वन्द्व की स्थिति है वहाँ बिंब की संश्लिष्टता है। जिसमें जीवन की प्राथमिकता है, सृष्टि का मूल तत्व छिपा है, जहाँ अनुवादक की चेतना इहलोक में उलझी हुई है वहाँ बिंबों का अस्तित्व इसके विरुद्ध है। वहाँ बिंबों की बुनियाद है। बिंब हमारी चेतना के संकुचन को मिटाने का आधार हैं। "बिंब या चित्र, सामाजिक, अति प्राकृतिक (या अतिप्रकृतिवादी या अतकर्य) तत्व, आख्यान या कहानी, आद्य या सार्वभौम तत्व हमारे कालातीत आदर्शों का कालबद्ध प्रतीकात्मक प्रस्तुतिकरण, कार्यक्रम सृष्टि या प्रलय या रहस्य का तत्व। समकालीन चिंतन में 'मिथ' के प्रति किसी भी रुचि मुख्यतः इनमें सें किसी भी पक्ष को लेकर हो सकती है।"[40] अतः जहाँ हमारी प्रतिमा भी सामाजिक व्यवस्था का बोझ है, दबाव है, क्षोभ है, वहाँ बिंब के समक्ष एक क्षण का आवेश है, चेतना का पुनर्जीवन है। जीवन जैसा है वैसा ही स्वीकार करना हमारी नियति है। जबकि बिंबों का दर्शन बिल्कुल भिन्न है। बिंब जीवन के सार्थक होने की खोज से भरे हैं। जहाँ हमारे बीच जीवन की रूग्णता है वहाँ बिंब में उससे लड़ने की चेष्टा है। बिंब सब कुछ के होने और न होने के बीच 'मुक्ति की छटपटाहट और संभावना' से भरा है। हमारी इंद्रियों में सामाजिक शिष्टता भरी है। बिंब में जटिल संवेदना है। बिंब के अजायबघर की सांकलें कोई यों

ही नहीं काट सकता। बिंबों की यह जो प्रतीकात्मकता है डा. केदारनाथ सिंह के अनुसार "काव्यात्मकता बिंब में यही प्रतीकात्मकता दो प्रकार से आती है – विभिन्न प्रसंगों में ही बिंब की अनेक कलात्मक आकृतियों के द्वारा तथा लाक्षणिक वक्रताओं के द्वारा।"[41]

रचनाकार के भीतर जो बिंब है उनमें जीवन-ऊर्जा का प्रवाह हो रहा है, बिंब संभावनापूर्ण हैं सकारात्मक हैं उनमें, अनंत तक जाने की ऊर्जा, प्रवाह है, बड़ी सूक्ष्म है।

बिंबों के विविध स्वरूपों की चर्चा यहाँ की जा रही है –

1. वैज्ञानिक बिंब, सामाजिक बिंब, मनोवैज्ञानिक बिंब, साहित्यिक बिंब, ऐतिहासिक बिंब, रागात्मक बिंब, सेक्सुअल, बिंब... आदि।

बिंबों के कुछ रूपों का अध्ययन केकी एन दारुवाला के काव्य संग्रह 'ए समर ऑफ टाइगर्स' के अंतर्गत किया जा रहा है। दारुवाला के काव्य में मिथों का महत्वपूर्ण स्थान है यह उनके रचनाकर्म की महत्वपूर्ण विधि रही है। दारुवाला ने मिथों का उपयोग सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक संदर्भों में किया है। 'मिथों' में छिपी 'मूर्तसत्ता' इस प्रश्न की ओर निरंतर संकेत करता है कि उनकी वर्तमान युग में प्रासंगिकता क्या है? दारुवाला ने कविताओं में जिन बिंबों का प्रयोग किया है वे हैं – अतियथार्थवादी बिंब, कल्पनात्मक बिंब, प्रतीकात्मक बिंब, प्रयोगवादी बिंब, फैंटसी, रागात्मक बिंब, रूपक आदि । इन समस्त बिंबों में कविताओं की निर्मिति और जटिल संश्लेषित अर्थ को खोलने की छटपटाहट ही नहीं बल्कि इनमें आधुनिक मानव मन की चिंता, बेचैनी, तनाव, अवसाद, विषाद, से मुक्ति की संभावना है। कवि के ये 'मिथ' दीर्घ अनुभव और अनुभूतियों पर आधारित हैं जिनमें जीवन की जटिलता उपस्थित है। इसके साथ ही जीवन की आकांक्षा और सत्य का प्रक्षेपण है। कवि के मनोद्वेगों का संबंध कविताओं में 'ध्वन्यात्मक बिंब' और ऐंद्रिक बिंब द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें वस्तुतः सामाजिक वर्गों के लिए और परंपरा विखण्डन के रूप में कवि ने अपनाया है। जैसे 'ब्रूटस और बार्खेज' कविता में ऐतिहासिक मानव प्रतिमा को आधार बनाकर कालचक्र में फँसे विवश परिस्थितियों से छुटकारा पाने की गवाही कवि देता है। यह कविता मोमोफोन (समध्वनि) या

होमोनिम (समानार्थक) के रूप में विषय-वस्तु को सार्थक अर्थ देती है। 'जुर्म नहीं बदला, खिलाड़ी बदल गए, अपराध नहीं' पंक्ति में खिलाड़ियों का बदलना और जुर्म का कायम रहना, में अतीत से भविष्य तक के घृणास्पद और हिंसात्मक प्रतिरूप कवि देख रहा है। 'बदलते आसमान में प्रतिरूप के पीछे/रहस्य के काले हृदय/अब ब्रूट्स देखा जा चुका। ज्वार को कुछ भी मोड़ नहीं सकता।' यह 'रूपक' और 'मिथक' एक तरफ तो ऐतिहासिक दस्तावेज की ओर ध्यान खींचते हैं दूसरी तरफ वर्तमान परिस्थिति, युग-बोध, जीवनानुभूति और जटिल एवं संश्लिष्ट तनाव है उसे कवि गहराई से अभिव्यक्त करता है।

प्यार और नफरत के चाकुओं से प्रहारित में अद्‌भुत अर्थ-सृष्टि हुई है। जो चोट करता है मन के भीतर कहीं छिपी संवेदना पर। 'शब्दों को न पढ़ो/ सिर्फ आवाज सुनो।' इसमें हृदय की गहनतम वेदना और अनुभूति व्यंजित है कवि की चिंता यहाँ साफ दिखाई देती है इसीलिए कवि बार-बार आवाज पर जोर दे रहा है। यह आवाज दारुवाला की अनेक कविताओं में कहीं-न-कहीं अवश्य उभरती है, जिसमें अर्थान्विति की अपार संभावनाएँ हैं। 'देवी की स्तुति' कविता में 'गुनगुनाते शब्द' 'एक तार के तारों के साथ संगीत ऊपर से आया' 'आधी जिदंगी यहाँ बैठा रहा देवी की स्तुति करते हुए', 'उसकी आवाज का सुर/उनके पास खींच लाया' 'जिला अदालत' कविता में 'जहाँ वकीलों की आवाज/नामों की छीटें/अब्र की तह में फेंकती हैं।' यह आवाज कहीं तो मौखिक हैं और कहीं अंदरूनी। मगर आवाज़ उभरती जरूर है। यह आवाज 'रूपात्मक' प्रतीक है।

"मेटानिमी और रूपक दो प्रकार की कविताओं की विशेषताएँ हो सकती हैं – सामीप्य के एक ही व्यापार-जगत में होने वाली गतिविधि के साहचर्य की कविता, और अनेक लोकों को जोड़ने वाले।"[42] दारुवाला की कविता 'देवी की स्तुति' में दो लोकों को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया गया है। जैसे 'एक दूजे से विरह नहीं है/हम दोनों जानते हैं/मैं सरकता रहूँगा/तुम्हारी देहरी पर/या तुम नीचे आओगी/घबराए हुए स्थिरता पर/ मैं जो हूँ/ मुझे प्रतीक्षा है/ तुम्हारी। एक तांत की तरह विचारवान/ एक शास्त्रीय गीत का।' यहाँ 'तुम्हारी देहरी' परलोक का सूचक है और 'तुम नीचे आओगी' इहलोक का। 'इतिहास' कविता में 'इतिहास

हमेशा उत्तर से आता है/ उसकी नाक गरूड़ सरीखी होती है/ और भूरे बाल/ हल्के रंग की त्वचा/ मैं भूल चुका हूँ इसकी आँखों का रंग/ दारुवाला ने 'इतिहास' को जीवन-चरित्र की आंगिक-वैशिष्टता से शोभित है। अर्द्ध पतलून पहने हुए/ न धुले शरीर की गंध/ मजबूती से पकड़े हुए शक्तिशाली ने हुई धनुष कमान।' दारूवाला रूपकों का प्रयोग निर्जी तथ्यों को जीवंत और आकर्षक बनाने के लिए करते हैं। यहाँ 'मिथ' 'कल्पनात्मक मूर्त-सत्ता' को ऐतिहासिकता से जोड़कर दारुवाला एक सार्थक निष्कर्ष की तलाश करते दिखाई देते हैं। जहाँ कुछ साक्ष्य, कुछ घटनाएँ, कुछ तथ्य, कुछ मानव प्रतिमाएँ एक-दूसरे से गुंफित हैं कि अतीत और वर्तमान का सेतु इस 'इतिहास' में भली भाँती देखा जा सकता है 'और शिकारी जो जंगल में आया शिकार करने/ अपना दाहिना हाथ और बंदूक गंवा बैठा/ क्योंकि गाय का झुण्ड उसे सीधा बाध की गुफा में ले गया। यहाँ 'गाय का झुण्ड' और 'बाघ की गुफा' प्रतीकात्मक बिंब हैं, जो मानव की लालसा और भयाक्रांत होने की दशा का संकेत-चिह्न हैं, 'बाल्टी से धीमी आवाज करता थन से दूध' 'बच्चों को ढोया' ये सभी मूर्त-सत्ता रूपक है। इस कविता में भी आवाज का अपना विशिष्ट आशय है। ये रूपक एक ध्वनि कंपित करते हैं, जिसमें 'ध्वन्यात्मक बिंब झलकता है, कि कुछ ऐसा है जिसके बदलाव के कारण आक्रामकता, हिंसा, अशांति, उपद्रव का आगमन हो रहा है। ये प्रतिरूपक उस बदलाव में ही समाहित है, यानी, नरसिंघा। यह सारे रूपक कविता में भावात्मक प्रभाव पैदा कर रहे क्योंकि "सच्चे रूपक का यह लक्षण होता है कि इसका प्रयोग करने वाला एक भावनात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सोच समझ और निश्चित इरादे से इसका प्रयोग करता है।[43]

दारुवाला ने इन कविताओं में सामाजिक वजर्नाएँ, संहार, युद्ध अशांति, पीड़ा, के इतिहास को दुहराकर मात्र त्रासदी का चित्रण ही नहीं किया बल्कि उसमें नई संकल्पना, संभावना की उम्मीद बनाए और जगाए रखी है। एक तरफ पुरा संस्कृति है तो दूसरी तरफ नव-जीवन का लक्ष्य, यहीं इतिहास की ज़मीन से खींचकर निकालने की प्रयास स्पष्ट दिखाई देती है।

नव्य 'क्लासिकी' काव्य की विशेषताएँ दारुवाला के काव्य में काफी हद तक मौजूद हैं। "जिनमें वस्तु के लिए गुण या विशेषण का प्रयोग होता है।"[44] जिसके अंतर्गत – पैराडॉक्स (अंतर्विरोध), ऑक्सीमोरोन (विरोधाभास), कैटाक्रेसिस (विपर्यय)

सम्मिलित किए जाते हैं। दारुवाला की कविता 'अंतिमत्ता' में 'मोतियाबिंद के खुले मुंह का देवत्व', 'गुफा की एक आवाज ने बात की उससे/सिर्फ उससे और सिर्फ भगवान के बारे में' और 'हंसी जनजाति को छोड़ गयी। जैसे भगवान और लोहा प्रविष्ट हुए यहाँ कई तरह के स्वीकृति सत्य का निषेधात्मक रूप दिखाया गया है। 'भगवान' और 'लोहा' दो विरोधी तत्वों की समानांतरता और हंसी का लुप्त हो जाना जहाँ एक विरोधाभास और दूसरी ओर विपर्यय है।

दारुवाला की कुछ कविताएँ लुप्त (व्यंग्य) बिंब को व्यक्त करती हैं। काँच धमनी कविता में 'भट्ठी जिसमें चिकनी मिट्टी की हाँडी और चिमनी कड़कड़ाती, फुकारती है। इसके अतिरिक्त 'अंतिम तिमिंगल' कविताओं में 'अंतिम स्तंभ घनघनाएगा' 'भनभनाहट' 'नमकीन जलन' आदि, 'ओस्लो के अंश 'कविता में 'लंबे सुलगते बाल', 'चौंका देने वाली उड़ान'। चूहे की फाँस कविता में ज़मीन गरजती है आसमान से अधिक'/आसमान थोड़ा झुक गया। 'बचपन एक साधारण वेदना है।

इसी प्रकार 'फास्टियन बिंब' जो सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रूपकों से भरे हैं – "ये प्रायः प्रकृति के वाह्य लोक को मनुष्य के आंतरिक लोक से जोड़ने की अपेक्षा, प्रायः एक भौतिक बिंब को दूसरे से (जैसा कि विपर्यय में होता है।) जोड़ते हैं।"[45]

दारुवाला की कविता में 'चूहे की फाँस' में 'सूर्य को जलरेखा के नीचे टूटे बल्ब की तरह' में 'जॉर्ज ब्रॉक को' कविता में' 'सागर और आसमान एक चौकोर तख्ते पर', 'कांच धमनी' कविता में 'हम लोहे की तरह खाते हैं, जंग, कांच की तरह बिखर जाते हैं, पर 'वहाँ एक लकड़ी-सदृश लड़का फटी बनियान में' या 'मालवाही पोत' कविता में। "बटेर की तरह उदास है दास' या बस समुद्री पाखी रह जाते मरते हुएओं की मुक्त गंध के पीछे' या जिला अदालत कविता में 'बहता है जिसमें मकड़ी का जाल/जहाज की मानिंद' या 'शिशिरकाल' और सभी दरख्त एक अनदेखी आग में झुलस जाते हैं, आदि।

दारुवाला की मिथकीय कल्पना की मूर्तसत्ता दो विरोधी भावनाओं पर आधारित है। "मिथकीय कल्पना जो व्यक्तित्व को वाह्य वस्तु जगत पर आरोपित करती है, जो प्रकृति में आध्यात्मिकता का पुट भरती है और इसे सजीव बना देती

है; और इसके विपरीत ढंग की कल्पना जो अपने से प्रतिकूल वस्तुओं का आश्रय देती है, जो अपने को निर्जीव रूप में प्रस्तुत करती है या अपने को वस्तु रूप में चित्रित करती है।"[46] दारुवाला की 'ब्रूटस और बार्खेस' कविता में 'युद्ध का क्षण; शब्द और दस्तावेज/समय की घड़ियों के साथ / पुनर्व्यवस्थित करता है इतिहास; / दानों को खींच निकलता है / अपने मुरझाए प्राचीन समय से, इनमें इतिहास का चित्रण सजीव रूप में हुआ है। मानो वह मानव का अतीत न होकर स्वतः ही चेतना मनुष्य है, इसी में 'इतिहास पराजित राजाओं में रुचि खतम कर देता है, यहाँ निर्जीव और सजीव के बीच के भेद को समाप्त कर दिया गया है। 'अंतिमत्ता' कविता में 'काला पत्थर' सम्मान था। या कांच धमनी कविता में 'अब चीज़ें बदल गई हैं। दर्शन कहीं खो गया... यहाँ दर्शन सिर्फ विचार ही नहीं बल्कि कृति के द्वारा उसे मूर्त रूप में ढाला गया है। या 'जिला अदालत' कविता में 'काली पतलून पहने मुंसिब'/ कानून का जिस्म दूर से चबा रहे हैं। या 'बचपन' कविता में 'और फिर निष्क्रियता से तड़पे/रिक्त मानिंद यहाँ 'बोरे' और 'व्यक्ति' के बीच 'अभिव्यंजना की सारी संभावनाएँ आत्मनिष्ठा और वस्तुनिष्ठता के इन्हीं दो परस्पर विरोधी छोरों में समाप्त होती दिखाई पड़ती है। तथा सह-संबंध स्थापित करती है। या फिर 'एक पतंग झपटना जो गिरा देता है/ मेरी उंगलियों के बीच फँसे रोटी के एक टुकड़े को।' यहाँ पतंग, उंगली और रोटी के बीच एक गहरा तनाव है एक तरफ तो दूसरी तरफ वस्तु-तथ्य अभिन्न संबंध में फँसी है।

दारुवाला की कविताओं में जिन स्थानों पर 'काव्यागत अस्पष्टता' और 'काव्यगत विशिष्टता' का मिलन हुआ है, वहाँ विस्तीर्ण रूपक मूर्त सत्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है। 'बचपन' कविता में 'कोई क्या कह सकता है/ जब छाया जीवन में आती है/वास्तविकता मलिन हो जाती है।' यह किस प्रकार की छाया है? तथा उससे कौन-सी वास्तविकता वास्तविकता मलिन हो रही है? यह सिर्फ व्यक्तिगत ऐंद्रिक अनुभूति ही हो सकती है। इसमें उद्देश्य और विधेय दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। 'छाया' और 'वास्तविकता' में अवश्य ही जो अस्पष्ट संकेत चिह्न छिपे हुए हैं वे कवि के अनुभूत दृश्य हैं। दारुवाला की कविताओं का मूर्त-सत्ता के रूप में पड़ताल करने के पश्चात् इस निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है कि "कवि के बिंब स्वप्न के बिंबों अर्थात् स्व-विवेक या निःसंकोच किसी तरह कहे छंटे स्वप्न के

बिंबों – जैसे होते हैं, ये उसके बाहरी आत्मकथन नहीं होते हैं बल्कि इन्हें उदाहरणों के रूप में रखा जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि इनमें उन बातों का प्रस्तुतिकरण न हो पाए जिनको कवि सचमुच प्रकट करना चाहता है। परंतु यह प्रश्न उठाया जा सकता है, "क्या कोई कवि अपने बिंबों के विषय में इतना असावधान हो सकता है।"[47]

वस्तुतः बिंब की कला का पहला क्षण है, सहज हो अनुभति की गहनतम पर्तों में उतरते जाना, बिना सोच, बिना विचार, निर्विचार में ठहरना। निःशब्दता का आवरण जहाँ ढक लेता है सब कुछ के होने का अस्तित्व। और उस धुंधलके में जगता है एक निःशब्द साक्षी। यह साक्षीभाव जिसमें जागरण और पदचाप आहट को उस अंधेरे में टटोलना, जहाँ सत्य, यथार्थ और सार्थक अर्थ की तलाश एक गहरी रौशनी में तब्दील हुई तमाम संश्लिष्टताओं में घिरे अर्थ का ताना-बाना होती है। यहाँ, बिल्कुल यहाँ मूर्त-सत्ता में लिपटी रचना की अद्‌भुत दिव्य-दशाएँ फैली हुई हैं। रचना (वृक्ष) की जड़ें हैं वहाँ आपस में गुंफित।

कविता का बीज है बिंब, रचनात्मक सृजन के समय बिंब का अस्तित्व रचना के फ्रेम के भीतर घुला-मिला होता है। इस अंतरंगता में भी बिंब का अस्तित्व कविता के फ्रेम से बिल्कुल अलग होता है, नितांत अकेला। इसलिए यदि बिंब को जानना हो "कला का आनंद लेना हो, तो हमें कलात्मक रूप से शिक्षित होना होगा।"[48]

जीवन की खोज में यह मूर्त सत्ता (बिंब) रचनाकार अपनी रचनात्मक मनोभूमि में बोता है और उसके जागरण अर्थात् अर्थ की रक्षा हमें करनी होती है, वो जो परम अर्थ है उसके फूल तब रचना में आप ही आप खिल उठते हैं। वह असाध्य श्रम की भेंट है, एक अलौकिक, अद्वितीय, अनूठा, अज्ञात, अनुभव जो बिंब में छिपा है। जो अवतरित होता है। यह क्षण बिंब का विचार-शून्य क्षण है। जहाँ कोई शब्द नहीं एक रिक्तता है साक्षी (अर्थ खोजी)। और अनुवादक को जिस क्षण यह अनुभव हो जाए जो रिक्त है वह ही साक्षी है और जो साक्षी है वह ही है रिक्तता का शून्य -अंतराल। तब जो 'स्पेस' है बीच में, वह ही है अर्थ की परम अनुभूति। बिंब आत्मबोध का एक क्षण होता है जो अनुवादक के लिए अत्यंत कठिन प्रतीत होता है। यह वस्तुतः वह भेद है, बिंब का, जो है – "बंधे और मुक्त बिंबों का भेद। पहले में श्रुति और पेशियों

से संबंधित बिंब आते हैं मौन वाचन के समय भी यह अनिवार्य रूप से जागृत होता है और लगभग सभी उपयुक्त पाठकों में एक जैसा ही रहता है। मुक्त बिंब चाक्षुष और अन्य सभी बिंब अलग-अलग व्यक्तियों और टाइपों में अलग-अलग ढंग के हुआ करते हैं।"[49]

अनुवादक के भीतर में बिंब को लेकर जो उसका मन है, उसमें विचार हैं, तरह-तरह के विचार ही विचार, कामनाएँ, इच्छाएँ, वहाँ अनुवादक की संवेदना और सांसारिक अनुभव की स्मृमितयाँ। जिसके पीछे हैं, उसका अतीत जो तय करता है भविष्य की मनोभूमि। भविष्य जो उत्सुकता, आकांक्षा, जिज्ञासा, आंदोलन से भरा है, अनुवादक इंद्रिय-पाश में फँसा होता है यह मन ही है उसका – जहाँ उपजता है अस्तित्व बोध।

अनुवादक को जितनी फिक्र कविता के रस, छंद, अलंकार विशेषकर इन पर पड़ रहे रंग की है, उतनी फिक्र वो बिंब (मूर्त-सत्ता) के भीतर जीते हुए मन की नहीं करता, जो कविता के प्राणों में बैठा है, उसे निरंतर आंदोलित कर रहा है, सपने बुन रहा होता है। अनुवादक मूर्त-सत्ता का अनुवाद अधिकांश यंत्रवत करता है। जबकि बिंबों की ऐंद्रिकता और संवेदना को वह विस्मृत किए है। वह रचना के फलक पर उभरे बिंबों को रुककर, ठहरकर देखता है, कि बिंब की परिस्थिति और परिवेश तथा समय क्या है? बिंब का अनुवादक करते वक्त अनुवादक की अनवरत अंतर्यात्रा जारी रहती है।

एक और बात; बिंब के वाह्य जगत का यथार्थ रचना की आंतरिकता या अंतःजगत है और बिंब का अंतरंग संसार जो कविता संसार का भी सच होता हैं मनोविज्ञान में इस वाह्य जगत के यथार्थ और रचना के अंतर्जगत के सत्य एवं यथार्थ को मानसिक प्रतिबिंब कहा गया है, जिसके चार स्तर बताए गए हैं –

1. ऐंद्रिक बोध

2. प्रत्यक्षीकरण,

3. अभिमत

4. धारणा

बिंब के अनुवाद की समस्या यही है कि अनुवादक इच्छानुरूप इंद्रियों को इस गहराई तक किस माध्यम से ले जाए? और किस तरह बिंब की भीतरी दुनिया का रस चखे? जहाँ सिर्फ बिंब की मिठास हो, उसका सौंदर्य रगों में घुल जाने दे। संगीत की हिलोर, उसकी अनुगूंज को प्राणों तक स्पंदित होने की छूट दे। एक जागृत अवस्था में तन्मय और – समग्रता में बिंब की तमाम छायाएँ उसकी मंद्धिम झलक को, सरलता को बहने दें। अनुवादक उस क्षण द्रष्टा होता है और उन भोगे हुए क्षणों का भोक्ता भी है।

अनुवादक की दूसरी समस्या है उसके मन में पहले चरण के बाद अब जो विचार पनप रहे हैं, या उभरे हैं, हर दो विचारों के बीच जो दूरी या फ़ासला होता है, एक रिक्तता होती है। दोनों के बीच जो खाई को पाटे है, जहाँ कोई कल्पना, कोई विचार, कोई संभावना नहीं सिर्फ एक सचेतन होती है। रचनकार बिंब में उसका समय, दृश्य के साथ प्रवाहित कर देता है जबकि अनुवादक उसी बिंब को अनुवादक में रचना के भीतर विसर्जित करता है।

बिंब के प्रवाह की अवस्था में समय के साथ रचनाकार और रचना की धमनियों में समय धड़कता है। यह समय रचना और रचनाकार के चित्त में डूबे राग का समय होता है। कलाकृति में भीतर उपस्थित विशिष्ट समय और बिंब के भीतर बहता समय ही उसे गतिमान बनाता है। अनुवादक अक्सर बिंब के भीतर के दृश्यों के ताने-बाने को कृति के समय के साथ जोड़ता है जबकि रचनाकार बिंब के 'अभेद्य दृश्यों के बीच बहते समय के साथ कृति की लय को स्पंदित करता है। अनुवादक और रचनाकार के बीच मूलभूत यही अंतर है जिसके कारण कभी-कभी बिंबों का अनुवाद अत्यधिक नीरस, कठोर, अबूझ सा जान पड़ता है।

रचनाकार जो शून्य-अंतराल का गुहावासी होता है यहाँ साक्षी और भोक्ता के बीच का भेद मिट जाता है, जबकि अनुवादक सिर्फ देखता है शून्य अंतराल, आकाश या अवकाश सब कुछ उस रचना बिंदु का प्रारंभ और चरम क्षण, अभेद्य दृश्य, समय अंतराल और शून्य सब कुछ। किंतु वह भोक्ता नहीं होता है।

पर्यवेक्षक होता है, वह सब कुछ के होने का निरीक्षण कर रहा है। वह लक्ष्य भाषा में बिंब के धारण या आत्मसात कर लेना चाहता है। अनुवादक कई बार, कई-कई बार बिंब से उलझता है, खीजता है, रीझता है। और कभी अपने विचार की ढाल में रखता, अभिप्रेत दिशा में बढ़ जाता हैं

यही कारण है कि बिंब के अनुवाद से कभी भी आश्वस्त नहीं हुआ जा सकता। यदि अनुवादक यह विश्वास भी दिलाए तो यह एक सीमा तक ही स्वीकार्य हो सकता है। इसलिए बिंबों का अनुवाद एक बड़ी समस्या होती है जिसमें रचनात्मकता के साथ नैतिक उत्तरदायित्व भी होता है। दूसरी तरफ यह चुनौती कि अनुवादक इसे कैसे अपनी भाषा में कितनी जीवंतता से प्रस्तुत करता है।

इस आलोचन एवं प्रयोग में है बिंबों का सौंदर्य छिपा है। यह सौंदर्य बहुत महत्वपूर्ण है। अनुवादक अक्सर इस सौंदर्य की सतही ऊँचाईयों को ही छूता है। सौंदर्य दूसरे शब्दों में आदर्श को अभिव्यक्त करने की आकांक्षा कला को परखने की एक कसौटी रही है। बिंब का प्रयोजन निहित है, ऐसे में बिंब के अनुवाद में अड़चनें भी आती हैं।

इसलिए अनुवाद में बिंब में निहित सारे आशय, संकेत एवं मनोभाव स्पष्ट प्रकट हों। यही अनुवादक की प्रयास प्रतिष्ठा होनी चाहिए।

बिंब के अनुवाद की महत्वपूर्ण समस्या है कि अनुवादक बिंब की इस भाव-दशा से अलग नहीं हो सकता। जातीय स्मृति के साथ एक गहन प्रतीष्ठा होती है। यह प्रतीति एक चमत्कार के रूप में रचना को दीप्त करती है। निमित्त मात्र ही होता है लेकिन विचार मानसिक शून्य नहीं । बिंब का स्पर्श कृति को कैसे विशिष्ट और अप्रतिम बना देता है। यह देखकर अनुवाद कार्य में प्रवृत्त होता है।

एक बात और, अनुवादक कृति में उपस्थित अपनी भाषा के अनुकरण से रचना के सत्य को प्रक्षेपित करता है। अनुवादक को भ्रमित कर देने वाला यह तत्व जोखिम भरा हो। वह बिंब के साथ आत्मविसर्जित आत्मघात कर सकता है और बिंब आहत हो सकते हैं। विशेषकर वह बिंब; जो हमें हमारे अस्तित्व ही की गहराइयों तक हिला देता है, उसकी केवल एक ही व्याख्या नहीं हो सकती। उसके कई अर्थ

हमारी अपनी ही धुंधली स्मृतियों और अनुभूतियों को याद करते हुए हमें अचंभित करते हुए किसी रहस्योद्घाटन की तरह हमारी आत्माओं को झिंझोड़ते हुए – हमारी अंतरतम भावनाओं तक पहुँचते हैं।

निःसंदेह बिंब की गहराई में प्रवेश करना उसकी अविस्मरणीय चेतना को लक्ष्य भाषा में जीना और जीवित रखना उसके भीतर की ग्रंथियों को स्पर्श करना, धमनियों आदि की शिराओं में बहती संवेदना को सहेज कर खींचना, मुट्ठी में बांधना, ये सारी सब क्रियाएँ बेहद पेंचीदा होती हैं। इसलिए अनुवादक अपनी सीमा या परिधि में जीता हैं

इस समस्या से अनुवादक अक्सर जूझता है वह इस परिधि के भीतर जाकर तमाम प्रसंगों और आकांक्षा को प्राथमिकता देता हुआ रचना के प्रति अपनी निष्ठा जताता है। और बिंबों से जुड़े समस्त रचनात्मक अवयवों एवं आशयों को यथातथ्य समझ कर अनूदित करता है। कविता विधा में तो अनुवादक को इस दिशा में अतिरिक्त रूप से सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि मूल के अर्थ का अनर्थ कभी भी घटित हो सकता है। इस लिए अनुवादक को अपनी सीमाओं का और उन खतरों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए, जिनके बारे में ऊपर विस्तार से चर्चा की गई है।

मुहावरे के अनुवाद की समस्याः

किसी भी भाषा संस्कृति में बसे मुहावरे उसके जीवन की पहचान होते है, मुहावरे ही हैं जिसमें प्रत्येक संस्कृति, उसकी परंपरा, दस्तूर, रिवाज, भाषा, कौम, मजहब, तहजीब वगैरह जीवित है। मुहावरे ही भाषाई संस्कृति के सृजनात्मक होने की पहचान होते हैं। एक सृजनात्मक व्यक्ति ही जानता है कि सृजन होता है तो कितनी उत्फल्लता और मस्ती पैदा होती है। मुहावरे को सृजनात्मक कहने का मतलब है सृजनात्मक मुल्क और उसकी आवाम अपने अस्तित्व के साथ गहन समस्वरता में जी रही है। दरअसल यह समस्वरता ही है जो मुहावरे को चित्रित करती है। जीवन के सदचक्र में बसे विचार और अनूभूति के चरम शिखर की अभिव्यक्ति और संप्रेषण के रूप में। मुहावरे रचना को बांधने और लंबी आयु प्रदान करने में कितने सहायक होते हैं मुहावरे का सार्थक एवं सटीक प्रयोग एक सर्जक को उत्तरजीविता प्रदान करता है।

चूंकि अनुवाद में हमेशा दो भाषाओं का आमना-सामना अपनी-अपनी संस्कृति, परंपरा, इतिहास के कारण होता है, कविता में मौजूद मुहावरे के संदर्भ में इसे देखें तो "मुहावरे भाषा की चूनर में टंके सितारों की तरह भाषा के सौंदर्य को बढ़ाते हैं, मानव मन के गहन भावों, विचारों एवं कल्पनाओं को स्पष्ट करने और उन्हें सारगर्भित अर्थ देने में सहायक होते हैं। मानव जीवन की चिरसंचित कटु-मधुर अनुभवों को सुंदर, संक्षिप्त एवं सटीक अभिव्यक्ति देने के साथ मुहावरे अतीत वर्तमान और भविष्य के बीच एक सेतु हैं।"[50] किसी भी भाषा के मुहावरे की सही समझ उस भाषा में बसी आवाम और कौम की संस्कृति को समझना है जबकि शब्दों से वाकिफ होना भाषा से वाकिफ होना है लेकिन यही सब कुछ नहीं है ।

मुहावरे जीवन के सबसे अधिक करीब होते हैं, मुहावरे में हर संस्कृति की स्मृति उसका आनंद-वैभव एवं सौंदर्य होते हैं, जो प्रत्येक दुनिया का अपना-अपना है। यदि एक भाषा के मुहावरे का अस्तित्व दूसरी भाषा में संप्रेषित हो तो अनुवाद में एक दूसरी भाषा के अनुवादक को ऐसे में गैर-सृजनात्मक होने का जोखिम उठाना पड़ सकता है। क्योंकि मूल भाषा में बसे मुहावरे का अस्तित्व सीधे भाषा और संस्कृति की आंतरिक संरचना में ही नहीं बल्कि उसके सत्य और रहस्य में ले जाता है यह रहस्य न समझ पाने की अवस्था में मुहावरे किसी और दिशा की तरफ मुड़ जाते हैं जहाँ शब्दों के सहारे ही सारी संभावनाओं को खोजना या टटोलना पड़ता है। यह बेहद मुश्किल स्थिति होती है, जबकि रचना में मुहावरों की उपस्थिति कविता का जीवन से गहरे रूप में जुड़े होने का संकेत देती है।

मुहावरों में ही मूल रचना की व्यापक-दृष्टि एवं शक्ति समाई रहती है जो हृदय में गहरे तल पर जाकर अपनी निहितार्थ के साथ खुलती है – यदि 'मुहावरा' शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान दें। यह शब्द निश्चित तौर पर अरबी संस्कृति और भाषा से जुड़ा है। मुहावरे का अरबी के अनुरूप जो अर्थ मिलता है वह है – "रोजमर्रा, बोलचाल, किसी भाषा का वह प्रयोग जो उस भाषा के बोलने वाले करते हैं और उसका अर्थ अभिधेय अर्थ से पृथक होता है। जैसे – लात खाना या आंख दिखाना। चूँकि लात रोटी की तरह खायी नहीं जाती। इनका अर्थ है लात की मार सहना और आंखों में पीड़ा होना, यही मुहावरा है।"[51] मध्यकाल के दौरान मुहावरों के प्रचलन का अनेक संस्कृतियों पर काफी प्रभाव रहा। हिंदुस्तानी संस्कृति और भाषा में

मुहावरा 'लोकोक्ति' या 'किंवदन्ति' के रूप में भी स्वीकार किया गया। ये ऐसे शब्द थे जो रोजमर्रा की जिंदगी में घुले-मिले थे। जिसका ध्वन्यार्थ हो। कुछ आलंकारकों एवं वैयाकरणों ने इसे अभिव्यंजना के तौर पर भी खोजने की कोशिश की। वस्तुतः लक्षणा और व्यंजना का जो क्रिया-व्यापार है, वही क्रिया-व्यापार मुहावरा भी करता है। फ़ारसी संस्कृति में इसका अर्थ अभ्यास और रोजमर्रा के तौर पर स्वीकार किया जाता रहा है।

आधुनिक काल में दिल्ली-मेरठ के आसपास उर्दू (जबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला) यानी लश्कर की भाषा जो लोक प्रचलन में थी, उसमें सर्वाधिक मात्रा में मुहावरे का प्रयोग किया। हिंदुस्तानी संस्कृति ने जब उर्दू की जगह खड़ी बोली को अपना लिया किया, तब दोनों भाषाओं के बीच फ़ासला कम हुआ और दोनों भाषाएँ अपने-अपने अस्तित्व को बचाए रखकर भी एक-दूसरे में घुलमिल गई। वास्तव में उर्दू का संबंध प्राकृत से गहरे जुड़े रहने के बावजूद अपने सांस्कृतिक विन्यास और रूझान में घनिष्ठ रूप से अरबी-फ़ारसी संस्कृति से संबद्ध था। इन भाषाओं के आक्रांताओं ने 'सुदूर मध्य एशिया से होकर भारत के कुछ क्षेत्रों पर आधिपत्य किया था। अरबी फ़ारसी तुर्की का प्रभाव उन आक्रामकों के भारत में प्रभाव विस्तार और फिर इसकी सर-ज़मीन से जुड़े रहने की उनकी आकांक्षाओं ने भारतीय भाषाओं में उनकी दिलचस्पी पैदा की। इस लिहाज से हिन्दवी, हिंदुस्तानी और फिर उर्दू और अपने और अधिक करीब जान पड़ी। और उर्दू भाषा लगातार इनको प्रभावित करती इनके रचनाकारों ने भाषा के रूप में उर्दू को आधार बनाया किंतु संस्कृति और शैली उनकी अपनी ही रही। एक तरफ उन्होंने भारतीय लोक कथाओं को अपनी लेखनी में शामिल किया वहीं उन्होंने मसनवी शैली को भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार इन रचनाकारों के साहित्य में मुहावरों का जो रूप उभरकर सामने आया वो दो संस्कृतियों (हिंदुस्तानी और अरबी-फ़ारसी) का दोआब था। मसनवी शैली प्रायः अरबी-फ़ारसी संस्कृति की पहचान रही वहीं एक तरफ हिंदुस्तानी संस्कृति ने भी उनकी इस शैली में अपनी छाप छोड़ी। यही कारण था कि संस्कृत साहित्य पर इसका (मुहावरा – अरबी-फ़ारसी-संस्कृत) प्रभाव कहीं भी नहीं दिखाई देता है

क्योंकि संस्कृत उच्च वर्गीय जन-समूह की भाषा थी। और उर्दू जन-सामान्य की भाषा के रूप में चल पड़ी।

बाद के दौर में हिंदी के उद्‌भव की तीन स्थितियाँ थीं – 1. खुसरो; इस समय में मुहावरे की सबसे अधिक उपयोग साहित्य की कोटि में विशेषकर काव्य विधा में मिलता है। जैसे अमीर खुसरो की पहेलियाँ, विद्यापति की पदावली आदि। दूसरी स्थिति थी दक्खिनी हिंदी; जिसमें मुल्ला वजही, अली आदिल शाह, सुल्तान कुली कुतुब ने रचनाएँ कीं। इन्होंने खड़ी बोली के स्थान पर दक्खिनी भाषा में मुहावरों का प्रयोग सर्वाधिक रूप से किया। अमीर खुसरो लोक मानस में लोक प्रचलित मुहावरे का भरपूर प्रयोग करते रहे। उनकी ज़बान और मुहावरे राजघराने के लिए न होकर आम-आवाम के जज़्बातों से जुड़े हुए थे। अमीर खुसरो द्वारा किए गए मुहावरे का प्रयोग; सर काटना, हाथ लगाना, आस रखना इत्यादि। 'हाथ लगाए वो सरमाए'। 'बीसों का सिर काट लिया, न मारा न खून किया'. 2. अली आदिल शाह (1490 सन्) के मुहावरे – 'करतल मलना' – 'तुझ याद करतल मरती हूँ', 'लहू तेल मने दिल तलती हूँ' 'पांव पड़ना' – 'फूट रात गई पांव पड़ते-पड़ते।'

3. सुल्तान कुली कुतुब शाह के मुहावरे – 'मन लगना', 'छबीली सो लगया है मन हमारा', 'मन में बसना' – 'बसे मन में सो इसके खयाल निस दिन'।

4. मुल्ला वजही के मुहावरे – (1635 सन्) : 'काम पड़ना' – काम पड़े बगैर किसका जात दिस नहीं आता' 'हैरान होना' – हूसा देख हुई हैरान यकायक किधर ते पैदा हुई यहाँ।' आगे की परंपरा में जिन रचनाकारों ने मुहावरे की मौजूदगी और महत्ता काव्य में बनाए रखी वे हैं – सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास, विद्यापति, जायसी आदि। मध्यकाल तक आते-आते सामाजिक रूप से भाषा का एक निश्चित प्रारूप स्थिर हो चुका था, सूर के मुहावरे की झलक इस प्रकार है – 'सुकति सुर धान अंकुर सी, बिनु बरसा जो मूल हुई' यह लोक-संस्कृति, युगीन समाज यानि सामंती समाज की विशेषताओं को भी दर्शाता है। इसमें 'धान' अंकुर और मूल शब्द में छिपे मुहावरे भाषी की सांस्कृतिक, सामाजिक स्थिति को अपने भीतर छिपाए हुए हैं जो 'हिंदी शब्द सागर' में दी गई मुहावरे की परिभाषा के अनुरूप व्यापक और व्यंजनात्मक अर्थ की पुष्टि करता है। हिंदी शब्द सागर के अनुसार मुहावरे का अर्थ

लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य का प्रयोग जो किसी एक ही बोली या लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो, इसमें मुहावरे की वास्तविक प्रतिमा छिपी हुई है।

आधुनिक काल में सबसे अधिक मुहावरों का प्रयोग हुआ है क्योंकि यह काल ऐतिहासिक, समाज, दर्शन, धर्म, संस्कृति, भाषा के मिलन का स्थल है। यही वजह है हिंदी दुनिया की समस्त भाषाओं से मुहावरे के प्रयोग के मामले में अधिक धनी है। कारण ये है कि संसार के समस्त साहित्यिक रूप से धनी देशों ने भारतीय संस्कृति के साथ संपर्क रखा है। सभी ने इसे प्रभावित किया। इन भाषाओं में अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, प्रोर्तुगीज आदि सभी महानतम देशें की संस्कृतियों का मिलाप हुआ है यदि हम छायावादी काव्य में रचे गए साहित्य की ओर दृष्टि डालें तो प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा, आदि रचनाकारों ने काव्य में मुहावरों का सघन प्रयोग किया है। ये मुहावरे आधुनिक दृष्टि से बड़े ही महत्वपूर्ण हैं ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार मुहावरे के लिए दो शब्द प्रचलित हैं 'इंडियन' और 'फ्रेज़' । 'इंडियन' मुहावरे और मुहावरेदार दोनों के लिए प्रयोग होता है। जबकि 'फ्रेज' शब्द केवल मुहावरों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इंडियन की परिभाषा और अर्थ[52] में बिना शब्द के उस संस्कृति का स्मरण हो। यह एक गहनतम अनुभूति है कोई विचार नहीं। यही अनुभूति जब स्वीकृत होती है तब उसके स्वभाव, प्रकृति, सुस्वाद को जाना जा सकता है। यहीं पर अनुवादक की क्षमता का परीक्षण होता है और दूसरी भाषा में बसे मुहावरे व जन-समूह की संवेदनाशीलता का पता चलता है यहाँ से वो रचना में मौजूद मुहावरे के सार्थक गंतघ तक पहुँचने का मार्ग तलाशता है। तब जो कुछ अज्ञात रह जाता है वह ही मुहावरे की चेतना में घुसने का द्वार बनता है। यह किसी भी भाषा और संस्कृति की जवन-चेतना है। मुहावरे जातीय पहचान अस्मिता, भाषा-साहित्य की उपलब्धि, सीमित शब्दों में विशिष्ट कथन, प्रोक्ति को आत्मसात किए हैं।

दरअसल मुहावरे शब्द की समझ में नहीं शब्द की सांस्कृतिक समझ से ही जीवन (कृति) में उतरते हैं। अतः मुहावरे को समझने के लिए शब्दों के साथ-साथ उसकी संस्कृति और आवाम के हृदय में उतरना पड़ता है जहाँ हृदय में बिना शब्द के उस संस्कृति का संस्मरण हो। यह एक गहन अनुभूति है कोई विचार नहीं। यही

अनुभूति जब स्वीकृत होती है तब उसके स्वभाव, प्रकृति, सुस्वाद को जाना जा सकता है। यहीं पर अनुवादक की क्षमता का परीक्षण होता है और लक्ष्य भाषा, संस्कृति में बसे मुहावरे व आवाम की संवेदनशीलता, गरिमा व महत्ता का पता चलता है। यहाँ अनुवादक वो रचना में मौजूद मुहावरे के सार्थक गंतव्य तक पहुँचने का मार्ग तलाशता है, तब जो कुछ अज्ञात रह जाता है वह ही मुहावरे की चेतना में घुसने का द्वार बनता है यह किसी भी भाषा और संस्कृति की जीवन-चेतना है।

"किसी भी मुहावरे के शब्द और अर्थजगत के विश्लेषण के समय और समाज के सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवेश और परिस्थितियों के संदर्भ स्पष्ट और साकार होते चले जाते हैं। जहाँ कहीं एक आख्यान अथवा उदाहरण बात को स्पष्ट नहीं कर पाती वहाँ मुहावरा, कहावत आदि के दो चार सांकेतिक शब्द विशद व्याख्या कर देते हैं।"[53]

मुहावरे की यह जो वृत्ति है उसका जो तंत्र है उसके हजार रूप हैं, हजारों-हजार रूप, मुहावरे बड़े ही फ्लैक्सिबल हैं, या कहें कि मुहावरे में ही समूची संस्कृति व भाषा का संयम छिपा है। यह संयम उसकी अपनी सक्षम है । जिस संस्कृति में मुहावरे नहीं हैं यह कल्पना नहीं की जा सकती कि उनका हर क्षण अराजकता उपद्रव से किस कदर भरा है। जबकि मुहावरे *'क्रिएटिव प्रॉसेस'* – हैं, मुहावरे में यह जो 'क्रिएटिव' है वह मानवीयता की अभिव्यक्ति से भरा है। यहाँ कुछ भी कुरूप, अश्लील, विध्वंसक, दमित नहीं है। एक ही संस्कृति में हर एक कौम के आवाम का मजहब और मुहावरे अपने-अपने हैं, चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ और कलाकार के मुहावरे इन लोगों से बिल्कुल अलग हैं, और होने भी चाहिए। क्योंकि यह सृजनात्मक व्यक्तित्व है। इसके बरक्श जो व्यक्ति मुहावरे की अलग वृत्ति में जी रहे हैं उनके सपने और भविष्य रूग्ण और कुंठित हैं हो सकता है कि विध्वंसक भी हों। मुहावरों का स्वाभाव ही ऐसा है कि उसका किसी भी आचारण, चरित्र, नीति से कोई लेना-देना नहीं है, न ही वे किसी अनुशासन या बंधन में जी रहे हैं, मजहब और कौम की सारी धारणाओं के पार हैं मुहावरे।

अनुवादक के लिए यह एक बड़ी जटिल समस्या है कि मुहावरों का अपना एक अलग अनुशासन है, वो अनुशासन कही और किसी से आरोपित नहीं है

स्वतःफूर्त है। मुहावरे का जो तंत्र है वह किसी और तंत्र द्वारा संचालित नहीं है, उसकी अपनी मर्यादा है, वह मर्यादा जिसमें रहकर उसका बोध निर्मित होता है, वे भौतिक चेष्टा से कतई प्रभावित नहीं हैं और अनुवादक इसके ठीक विपरीत तंत्र में जीता है। उसका अपना तंत्र तमाम प्रथकताओं और सह-संबंघों के बीच जानने की सामर्थ्य से भरा है। लेकिन उसका चरित्र, आचरण उसकी मर्यादा सामाजिक और सांस्कृतिक नीति और आचरण से बंधा है। अनुवादक के पास उसकी सांस्कृतिक मनोभूमि और सामाजिक संघटनों का अनुशासन है। जो बाहर से आरोपित है। उसके जीवन का तंत्र तमाम सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था से न्यस्त और संचालित हो रहा है। उसका बोध और जागरूकता के बीच ये सारी चीजें अड़चनें पैदा कर रही हैं। क्योंकि उनमें सुविधाओं का जाल है और मुहावरे एक क्षण मु इसके पार ले जाने की मंशा से भरे हैं। बस अनुवादक को इस विकास, उस समझ नें खुद को उस आखिरी बिंदु तक ले जाना पड़ता है क्योंकि, मुहावरों में कुछ भी ऐसा संगठित नहीं होता जो अनुवादक के पास है। जैसा उसका बोध है, मुहावरे के उन क्षणों का ख़याल अनुवादक को नहीं है और अगर है तो भी समस्या यह है कि वह उस ख़याल को किस अंदाज में प्रकट करे।

मुहावरे की अनगिनत, असंख्य प्रतिमाएँ हैं, जिन्हें देखकर तरह-तरह के ख़्याल मन में उभरते हैं। वे सारे भाव जो उसमें न्यस्त हैं, हमें एक साथ दिखाई पड़ सकते हैं। कभी एक-एक करके दिखार्त देते हैं, क्योंकि उसमें एक आखिरी गहरी अवस्था की छवियाँ प्रतीक रूप में छिपी हैं, एक गहरी अवस्था के होने का प्रतीक है ये मुहावरे, मुहावरे की सारी प्रतिमाएँ देखकर अनुवादक को एक आश्चर्य का अहसास होगा। उनमें एक तरफ तो प्रलोभन है, दूसरी तरफ़ गहरे सवाल हैं, जिन्हें शायद कभी प्रकट नहीं होना चाहिए था। वे अकस्मात यदि प्रकट हो जाएँ तो क्या होगा? सभी चिंतित हैं, इसलिए सारे लोग मुहावरों को कुछ खास फ्रेमों में ही रखकर देखना पसंद करते हैं। सभी ऐसी ही विवशता में जी रहे हैं। ये फ्रेम जो मुहावरे के अपने हैं, बड़े गहरे हैं, जिनमें अनेक अर्थपूर्ण अक्श छिपे हैं और हमारे मन में इन अक्शों को लेकर संदेह है। कुछ खास संदर्भों में ही हम उन्हें 'मुहावरे' के रूप में प्रयोग करते हैं। हम उन्हें अपनी मर्यादा में, अपनी समझ से एक खास अर्थ प्रदान

करते हैं, जहाँ मुहावरे का अपना कुछ भी उस जैसा नहीं रह जाता, उस खोखलेपन में मुहावरे की सारी संभावनाएँ ख़त्म हो जाती हैं।

हमारा तंत्र मुहावरे के उस फ्रेम को समाज में नहीं लाना चाहता, क्योंकि हमें उसमें कोई अर्थ, कोई प्रयोजन, कोई सार्थक भाव उस जैसा नहीं दिखाई पड़ता जो हमारे पास, हमारे बोध का हिस्सा है, किंतु मुहावरे को समझने के लिए अनुवादक को इसे तोड़ना होगा। यह ख़्याल काफी नहीं कि हमारा व्यक्तित्व ही हमारा स्वभाव है, क्योंकि ऐसा मान लेने पर मुहावरे के साथ हमारा तादात्म्य स्थापित नहीं हो सकता। हमारे भीतर संस्कारों को लेकर एक आसक्ति, एक मोह है। इसलिए हम जो चाहते हैं मुहावरे में वही खोजना पसंद करते हैं। वही सब कुछ देखना, पाना चाहते हैं।

मुहावरे तब भी बचे रहेंगे, कभी खत्म न होने की मंशा गुंजाइश से भरे हुए, हजारों बरसों की देन हैं ये जिनका अतीत, इतिहास, परंपरा का न तो कोई आदि है न अंत। भले ही वे हमें 'अनुवाद' को क्षणभंगुर और निरर्थकता से भरे लग सकते हैं।

मुहावरे जीवन को जीने का रूपांतरित और आनंदित करने का व्यावहारिक सूत्र हैं। बोधपूर्वक यदि हम इन्हें समझे, देखें तो हमारे जीवन की भूमि में निरी उर्वरता से भरे हुए ये अंश एक अद्‌भुत क्षण, घटना, गहरी अनुभूति बनकर घटते हैं जिन्हें हम चाहे तो मुहावरे कहें या फिर कुछ और.... हम मुहावरे को इसलिए भी नहीं समझते क्योंकि हमारा अस्तित्व हमें रोकता है उस दिशा में जाने से, जहाँ जीवन का आवेश, बहाव इतनी तीव्रतम गति से बह रहा है कि कोई भी चीज सुनिश्चित, तटस्थ और दृढ़ नहीं है, कई घटनाएँ स्मृति में एक साथ टकराती हैं और उसी क्षण घट जाती हैं जिसे हम अनुभव न कर पाने की अवस्थामें जी नहीं पाते। उस क्षण की अनुभूति हमें व्यर्थ मालूम पड़ती है। जबकि मुहावरे में बहुत छोटे-छोटे क्षण हमें नित नई अनुभूति और अनुभवों से साक्षात्कार कराते हैं। वे सक्षम हैं, बस हमारी ही असमर्थता से भरे हैं हम उन्हें समझ नहीं पा रहे हैं।

हम मुट्‌ठी में जीवन और जगत के सारे अनुभव समेट रहे हैं। जबकि मुहावरे हमें बाहें पसारकर जगत के फलक को आग्रह किए अनुभव करने को कह रहे हैं। हमारे पास मुट्‌ठी भर अर्थ हैं। जिन्हें हम मुहावरे में पिरोना चाहते हैं। जबकि मुहावरे

में अर्थसंपन्नता की असीम संभावनाएँ हैं। ऐसे अर्थ हैं जिन्हें लीक पर चलने की आदत नहीं हैं उनमें जीवन के नए आधार स्तंभ निरंतर विकसित करने की चाह है और हम सीमित बोध को ठोस ज़मीन पर मुहावरे को फीके रंग दे रहे हैं। जिसमें भविष्य की सारी संभावनाएँ शृंखलाओं में जकड़ी हैं इन शृंखलाओं को तोड़ने का बोध एक संकल्प के रूप में मुहावरे में समाहित है।

मुहावरे कोई भौतिकवादी सिद्धांत नहीं है, वे मेटाफिजिक्स (आत्मविज्ञान) हैं, वह एक प्रयोग हैं, हर क्षण कुछ नएपन की खोज, नएपन के अनुभव से भरे हैं मुहावरे के 'मेटाफर' को जानने की कोई विधि है? या उस तक पहुँचने का कोई उपाय है? मुहावरे सत्य की दिशा में भाषा और जीवन-जगत की गहनतम अनुभूति लोक अभिव्यक्ति और लोक स्वीकृति है।मुहावरे की धारणा विश्वास पर टिकी है, इन धारणाओं को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। वे *फिक्स* हैं, एकदम ठोस।

हर मुहावरा उस जीवन के सत्य के प्रयोग का एक संकेत सूत्र है, उस अनुभूति का, जो मस्तिष्क के उस हिससे तक जाती है जहाँ विवेक में आमूल अंतर पड़ जाता है, जहाँ से एक नई दृष्टि, नई सोच, नई शक्ति, नए प्रत्यक्ष के द्वार खुलते हैं, ध्यान रहे यह पूरी प्रक्रिया या पूरा क्षण काव्यात्मक संकेत सूत्र प्रतीक होकर भी गणित के सूत्र जैसा है, जहाँ मनुष्य के अंतस जगत के सापेक्ष और वाह्य जगत के सापेक्ष एक नियम बनता है और इसके निरपेक्ष, जगत और सत्य के बीच मानवीय चेतना के क्रियाव्यापार के विस्तार का अन्वेषण और स्फुरण घटित होता है। और तब सारे उद्‌गार मुहावरे के रूप में फूट पड़ते हैं। यह जहाँ एक ओर काव्यात्मक है वहीं दूसरी तरफ इसके सूत्र बिल्कुल फिक्स हैं, मुहावरे परिणाम हैं उन क्षणों का, जो जैसे घटे, परिणाम वैसे ही मिले, यह क्षण हमारे जीवन में भले ही रूपांतरण की अवस्था में घटे मगर कभी न कभी घटित अवश्य होते हैं। तभी हमें बीते हुए क्षण जो इस क्षण का हिस्सा थे उनका परिणाम यानि मुहावरे स्मृति में परिभ्रमण करने लगते हैं। इस दशा में हमें उन क्षणों का सौंदर्य और आनंद का आभास भी होता है और उस क्षण में घटने सत्य की अनुभूति भी। यहाँ विश्वास करना नहीं पड़ता। यह सुनिश्चित है, कि जिस क्षण को जैसा जिया वैसा उसका परिणाम, इसलिए मुहावरे बेजोड़ हैं।

अनुवादक के नाते जो समस्या है उनके कारणों पर निगाह डालें तो मुहावरे हमारे अनुभवों, अनुभूतियों, विचारों संस्कारों का एक तरफ स्वीकार भाव है तो दूसरी तरफ एक गहरी सामाजिक प्रतिक्रिया है। यह जो प्रतिक्रिया है सामाजिक चेतना के परिवर्तित चित्त और प्रचलित मूल्यों के प्रति एक चुनौती है, यही मुहावरे का लक्ष्य है, और यह एक विकल्प भी है।

पुराने ढांचे और नए विचार जगत के बीच सामंजस्य बनाए रखने का। और यह विकल्प ही समझ है – नई सामाजिक और पुरानी रूढ़ियों, मान्यताओं के बीच एक वैचारिक आयाम, एक सृजनात्मक पहल की, अनुवादक भ्रमित है हर क्षण, मुहावरे नए-नए आग्रहों से भरे हैं।

जहाँ एक ओर मुहावरे हमारी दुनिया का सच हैं, रचना में वही मुहावरे उस को रचना की दुनिया में कलाकार के सच के रूप में बदलने का प्रयास है, वहाँ भी उसमें गहरी प्रतिक्रिया है, संभावना है, आग्रह है। रचना की दुनिया का सच भी तो आखिर हमारी ही दुनिया के सच के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया है, अनुवादक की मुश्किल यह है कि वो रचना में मौजूद मुहावरे को समझने के पहले रचना के समय और भीतर समाई प्रतिक्रिया के उस दुनिया के सच के विविध आयामों को कैसे समझे? क्योंकि बगैर यह जाने मुहावरे गहरी प्रतिक्रिया को देख पाना असंभव है, इसके बाद ही वह किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच सकेगा।... किंतु यह बिल्कुल जरूरी नहीं कि जिस निष्कर्ष पर पहुँचा है। वह सही रचना का सत्य है, प्रतिक्रिया है। क्योंकि अनुवादक रचना में मौजूद मुहावरे और प्रतिक्रिया के बिल्कुल दूसरे छोर, दूसरे हिस्से में खड़ा है। जहाँ वह समय को शामिल करता है।

इसके ठीक उल्टी है रचना और मुहावरे की विशिष्ट अनुभूति वहाँ विचार ही विचार है, मन जो चाहता है वही कर रहा है, वहाँ संकोच नहीं, बुरे भले की फिक्र नहीं, दबाव नहीं।

विचार खुद-ब-खुद उठते हैं, गिरते हैं, डूबते-उतरते हैं, कभी तटस्थता हो एक किनारे बैठ जमे हैं क्योंकि कलंत, कभी अनायास ही भटकते हैं, कभी रूक कर सब कुछ को देखते हैं घटते हुए, बीतते हुए, गुजरते हुए। उन्हें सुंदर-असुंदर, श्लील-अश्लील, जैसा कुछ नहीं सूझता। वे चकित नहीं, अज्ञात नहीं, स्तब्ध नहीं,

साक्षी हैं और सहज हैं, उनमें हर क्षण के घटने का प्रवेश है इसलिए कह रहा हूँ, मुहावरे एक संकेत-प्रणाली है, जो हमें बताते हैं जिस छोर पर हमारा ठहराव है वहाँ से किधर जाएँ? यह वर्तमान के प्रति एक प्रतिक्रिया, एक प्रयोग हैं जिसमें हर क्षण का सृजन छिपा है।

मुहावरे मनोवैज्ञानिक प्रतीक होते हैं मनुष्य के मन, चेतना और वैचारिक अंतजर्गत के या कहे कि जन समूह को सामूहिक चेतना के प्रतीकात्मक रूप हैं। समूची दुनिया की संस्कृति, सभ्यता, समाज में मुहावरे का वुजूद यों ही नहीं हैं जनमानस की भोगी झेली अनुभूतियों के साक्षी हैं। समाज में जो कुछ भी शिष्ट रहा है या अशिष्ट है उन सब के बीच मुहावरे एक श्रृंखला हैं। मुहावरे का अपना एक सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष है जो जीवन की तमाम भाव-दशाओं से जुड़ा है, किसी भी संस्कृति का मुहावरा वहाँ की आबो-हवा में रंगत भरता है। उसे उबाऊ होने की दशा से निश्च्छल बनाता है। याकि एक ही संस्कृति में दो व्यक्तियों के बीच फासला कम करता है, जो कुछ भी मनुष्य के मन में आत्मघाती, गंभीर रूग्णता से भरा है, मुहावरे इन सब का परिष्कृत रूप हैं, इस जमीं पर किसी भी जीव के पास सबकी अपनी-अपनी भाषा है किंतु मुहावरे सिर्फ मनुष्य के ही पास हैं, मुहावरे मनुष्यत्व के होने और मनुष्य होने का स्वीकार भाव हैं, मुहावरे समय, काल और जीवन की सापेक्षता में भी निरपेक्ष भाव से मनुष्य और सापेक्षता को प्रासंगिक बनाए रखते हैं।

मुहावरे मनुष्य की सारी सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए उन्हें निरस्त करने की चेष्टा से भरे, ऐसे मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं जहाँ सिर्फ वर्तमान को जीने का अर्थ छिपा है, यह अर्थ ही मुहावरे में छिपी संवेदना विचार व सत्य के प्रक्षेपण को उद्घाटित करता है, यही वजह है कि अनुवादक के लिए मुहावरे के इस मनोविज्ञान को समझना बेहद कठिन है, मुहावरे जीवन को संग्राम की भाँति नहीं देखते। वे जीवन के साथ मैत्रीभाव से भरे हुए हैं, इसीलिए मुहावरे का अस्तित्व बहुत सूक्ष्म है वह मात्र हमारे मन और बुद्धि की भौतिक रासायनिक प्रक्रियाओं का समुच्चय नहीं है, बल्कि सत्य से गुजरने, सत्य की अनुभूति, सत्य के प्रतीति का पुनर्मूल्यांकन हैं, इसीलिए किसी भी ऐतिहासिक या पौराणिक गाथा में छिपे मुहावरे व चरित्र सिर्फ वहीं नहीं हैं, जो वह थे, उसका व्याख्यायित स्वरूप भी मुहावरे की दुनिया में ही बसा है।

सृष्टि के सभी तत्व चाहे वह प्रकृति जीव और ब्रह्म कोई भी हो मुहावरे में ही वह क्षमता या सामर्थ्य है जो उन्हें अपने भीतर प्रतीक रूप में धारण किए सृजन की यात्रा पर निकले हैं, जहाँ एक ओर उनकी अंतर्यात्रा चल रही है वहीं दूसरी ओर वे दुनिया से साक्षात् हुए बर्हिगत यात्रा पर भी निकले हुए हैं। और इन दोनों यात्राओं के बीच कहीं कोई अवरूद्धता नहीं है। अनुवादक की मुश्किल यही है कि वह मुहावरे की इस प्रक्रिया को किस तरह समझें । यदि बात समझ में आ भी जाए तो लक्ष्य भाषा में इसे अभिव्यक्त करना कहाँ तक संभव है?

मुहावरे ही हैं जिनमें किसी भी 'संस्कृति' और कौम का धार्मिकता, संयम और समन्वय का समुच्चय मौजूद है, मुहावरे के भीतर जो विचार हैं वे सद्भावना से भरे हुए हैं, वहाँ पलायन नहीं है, हिंसा नहीं है, किसी भाव का नकार नहीं है, अतिक्रमण नहीं है। बहिष्कार नहीं है, हाँ इतना जरूर है मुहावरे में विरोधाभास की दो धाराएँ हमेशा रही हैं।

एक धारा सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का परिष्कार है दूसरी धारा इन्हीं मूल्यों की रूढ़ि का बहिष्कार, मुहावरों के अनुवाद की जो सबसे बड़ी चुनौती है वह यही है, वे तुरंत ही फूट पड़ते हैं और उनके भीतर कितना कुछ भरा है वह सारा का सारा एक बार में, एक समय में हासिल नहीं किया जा सकता, न ही उसे अनुवाद में बचाए रखा जा सकता है, क्योंकि मूल में वह कुछ अनभिव्यक्त है वह आप ही अभिव्यक्त होने का मार्ग और भाव खोज लेता है, यहाँ पर अनुवादक को मुहावरे की वास्तविक क्षमता का पता चलता है, मुहावरे में जो कुछ आता है वह सायास नहीं, उसके लिए प्रयास करना नहीं पड़ता, वह अनायास ही हमारे अनुभव का हिस्सा बनकर फूट पड़ता है,

अनुवाद में मुहावरे ऐसी ही अड़चनों से भरे हैं और अनेक बार इसके विरुद्ध होता है, उसमें 'कांफ्लिक्ट' पैदा हो रहा है, क्योंकि मुहावरे मनुष्य मन के सांकेतिक प्रतीक और हृदय में उठे संवेगों का मनोविज्ञान तथा विचारों का दर्शन हैं, जिसके ओर-छोर का पता लगाना निहायत कठिनाई से भरा है।

मुहावरे फ्रायड के मनोविज्ञान की भाँति ही मनुष्य की सारी नैतिकता के भीतर दबी कुंठा का मात्र लोक नहीं है उसमें कर्म, सिद्धांत, व्यवहार, भाव, विचार,

संकल्पनाएँ मन के दो छोर और अचेतन में एक साथ एक ही समय में एक ही धारा में साथ-साथ चलती कोई बात जो मुहावरे के रूप में ही कही गई वह एक तरफ ठोस आधार और तथ्यात्मक है दूसरी ओर इसमें छिपा भाव जो बहुत गहरे तक कचोटता है, चोट करता है, संघर्षशील है, वह भाव साथ-साथ चलता है, दोनों के बीच कोई दूरी नहीं है, न ही समस्वरता है, दोनों वर्तमान की देन हैं।

वहाँ मैत्री और विषाद एक साथ विश्लेषित होते हैं या कहें कि दो विपरीत भाव-दशाएँ एक साथ फूट पड़ती हैं, जिसके बीच में इतना कुछ है, जो कि मुहावरे में समायी कामना है और यही कामना मुहावरे के निर्मित नियति है, अतः इस सत्य से गुजरने के लिए अनुवादक का कृति में होकर गुजरना काफी नहीं बल्कि मुहावरे में समाए सत्य को पाना भी जरूरी है, दरअसल नैतिकता से भरे हुए अनुवादक के मस्तिष्क की ग्रंथियाँ नैतिकता में रहकर, उस सीमा के स्वीकार-भाव में ही पनपती और गतिमान होती हैं, जिसके कारण वास्तविक अर्थात् और सत्य को धारण करने वाली चेतना के साथ स्वतंत्र रूप से गतिमान हुए मुहावरे अनुवादक को चुनौती देते हैं किंतु निरंतर एक ही दशा में विकसित हुआ अनुवादक का मस्तिष्क इस चुनौती से अपने अभ्यास के कारण संयोग नहीं बना पाता। जबकि मुहावरे अनुवादक के बोध को इतनी सहजता से गंतव्य तक ले जाने को तत्पर हैं कि अनुवादक को इसमें तनाव महसूस होता है।

मुहावरे का स्पर्श इतना नैसर्गिक होता है कि चित्त अवस्था में वह अनुभूति स्वाभाविक, प्रतीत हो वहाँ कोई दबाव महसूस न हो, तब मुहावरे अनुवादक की चेतना से होते हुए सीधे हृदय में उतर जाते हैं। अनुवादक की सहज ग्रहणशीलता में ही संभव है मुहावरे के भीतर छिपे भाव, उसकी गहराई को पाना, मुहावरे का यह तेवर अनुवादक के लिए हमेशा चुनौती से भरा है एक आंतरिक परिभ्रमण है, जहाँ ठीक स्मृति के विपरीत दिशा में भ्रमण करना पड़ता है। अनुवाद की पहली समस्या यह है कि यहीं, ठीक इसी जगह मुहावरे के भीतर छिपे बिंब का प्रतिबिंबन होता है। जबकि अनुवादक की चेतना हमेशा मुहावरे के बाहर और कृति के भीतर ही सर्वथा परिभ्रमण करती है, मुहावरे के अनुवाद में यह स्थिति दिक्कतें पैदा करती हैं, कि अनुवादक की चेतना विषय और विषयी दोनों के साथ कैसे सामंजस्य बनाए रखें ताकि मुहावरे की सही मायने में पहचान हो सके?

जो दूसरी मुश्किल है वह है अनुवादक के मस्तिष्क में भिन्न-भिन्न संवेदनाएँ, विचार कल्पना कृति को लेकर चल रही है और मुहावरे के भीतर उस संवेदना को आत्मसात किए एक और संवेदना भिन्न धरातल पर है जिसे अनुवादक की दृष्टि अक्सर देख नहीं पाती जबकि दोनों संवेदनाएँ कृति में एकात्म हुई अपनीअपनी धुरी पर चल रही हैं ऐसे में अनुवादक क्या महसूस करे और क्या छोड़े? यह अंतर्दृष्टि का अंतर उसे सत्य और अर्थ दोनों से विचलित कर देता है।

तीसरी मुश्किल है अनुवादक की तत्परता कृति को समझने में है चूंकि वह उसकी अभिरूचि का विषय हो सकता है। जबकि उसकी कुशलता है मुहावरे तक पहुँचने में सही दिशा की तरफ जाने में, अनुवादक किसी भी दिशा में तत्परता और कुशलता के बीच इस भेद को अक्सर मिटा देता है यहीं से कृति में बसे मुहावरे और अर्थ को समूचे रूप में ग्रहण करने में समस्या खड़ी होती है।

चौथी समस्या है कृति में यदि कविता की पूरी दुनिया शोक भाव से ग्रस्त है वहाँ अनुवादक को बाहरी दुनिया की दिखाई देती है तो एक परेशानी यह है कि वह शोक भाव सिर्फ बाहरी दुनिया तक सीमित नहीं है इसमें एक अंर्तमन के विषाद की उदासी भी कहीं न कहीं है और यदि यही वेदना कृति में मौजूद मुहावरे के भीतर भी अपनी जड़ें फैलाए हुए हैं तो मुहावरे का शोक भाव कृति के शोक भाव से बिल्कुल अलग एक 'कन्फ्लिक्ट' उदास भाव है, जो कविता के शोक भाव को और अधिक गहरा, नए आयाम की तरफ, नए अर्थ, नई संभावनाओं की तरफ ले जाने को आतुरता से भरा है, कविता की उदासी बाहरी दुनिया की उदासी को प्रस्तुत करने में अजायबघर की तरह हैं जहाँ उसे कैद किया गया है, जबकि मुहावरे में मौजूद शोक भाव उस अजायबघर में कैद आहत अनुभूति भाव और बाहरी जगत के शोक भाव के एक तरफ प्रतिरोध में है, दूसरी तरफ शोक भाव को प्रकट करने में निष्प्रयास 'इफर्टलेस' एक असीम भाव की अभिव्यक्ति है। यहाँ विरुद्ध भावों की एकात्मकता और टकराहट है। अनुवादक की परेशानी यह है कि वह अनुवाद में इस अंतर को कैसे बनाए रख सकता है? जबकि उसे दोनों में कोई भेद ही दिखाई नहीं दे रहा है।

कविता की संप्रेषण बाहरी दुनिया के विरुद्ध संप्रेषण हो सकती है और बाहरी दुनिया की अनुभूति भी हो सकती है। लेकिन यदि मुहावरे में वही जलन मौजूद है तो वह कविता और बाहरी दुनिया के सापेक्ष प्रतिरोध में एक ऐसी प्रतिक्रिया है जो बुझी हुई राख में दबी चिंगारी की तरह है। वह हमेशा सुलगती रहती है कभी समाप्त नहीं होती। इसीलिए मुहावरे का किसी भी कृति में आना कृति को जीवन और सत्य के आत्म-भाव और विश्वसनीयता से जोड़ता है, और वह आत्म-तत्व अनंत की संभावना से भरा है। अनुवादक कविता के प्रति गहरी अभिरुचि, संवेदना, और भाव से भरा हुआ है। किंतु मुहावरे के प्रति उसका रूख और रवैया, उसके तेवर मुहावरे की समर्थकता और क्षमता से बिल्कुल भी मेल नहीं खाते, इसीलिए मुहावरे से उसका नाता जोड़ना बड़ा ही मुश्किल और संकटपूर्ण स्थितियों से भरा है।

मुहावरे अधिक पूर्णतावादी हैं इसके बरक्स हमारी 'अनुवादक' की चेतना एक जैवयांत्रिक घटना है, मुहावरों की अभावग्रस्तता में 'संस्कृति', 'सामाजिकता' और 'सामूहिकता' एक मानसिक रुग्णता से भरे हुए हैं, जिसमें सृजनात्मक चेतना की बजाए जटिल नकारात्मक भावना है। हमारी विकसित होती सभ्यता में लगातार मुहावरे के प्रति नकारात्मक रवैया पनप रहा है। यह घटना मात्र संयोग नहीं है, यह घटना संपूर्ण यांत्रिक विकास है, जबकि मुहावरे जैविक उपचार की घटना है, जहाँ मुहावरे जैविक उपचार की घटना है, जहाँ हमारी चेतना में यह भाव मौजूद है कि मुश्किल से मुश्किल हालातों में भी मुहावरे की क्रियाशीलता हमेशा जारी रहती है, हम सिर्फ स्थितियों और घटना का अवलोकन मात्र करते हैं।

हमारा यांत्रिक दृष्टिकोण जहाँ खंडित होता है वहीं हम अतीत के कारणों, गुजरे हालात पर विचरण किए यांत्रिक विकास के खंडित होने की परवाह नहीं करते। तब हमारे समक्ष होता है यांत्रिक घटना में दबे हुई हमारी संवेदना और सत्य का विचार और मुहावरे हमें अनायास ही विकृतियों के पार उस चरम निष्कर्ष तक ले जाते हैं, जहाँ मुहावरे में विकृति, रूग्णता, कुंठा, यांत्रिकता का अतिक्रमण छिपा होता है। क्योंकि मुहावरे मुश्किल हालात से मुक्ति की संभावना को व्यक्त करते हैं, जहाँ होता है यांत्रिक चेतना का संपूर्णता में बहिष्कार, सुसुप्ति से जागृति का चरण आरंभ होता है अनुवादक की पांचवीं समस्या भी है कि वह सब कुछ को प्रत्यारोपित करना चाहता है जबकि भाव का प्रत्यारोपण न होकर मुहावरे सृजनासत्मक भाव को धारण

किए हुए हैं, अनुवादक इस मुश्किल से निजात पा भी ले तो भी अनुवाद में कुछ न कुछ के छुट जाने का अभाव, वास्तविक अनुभूति की अनुपस्थिति, नकारात्मक भूमिका निभाती है, जबकि मुहावरे सकारात्मक अवस्था के प्रतीक हैं, कविता में यह सकारात्मक भाव का द्वन्द्व हमारे (अनुवादक) मस्तिष्क के केंद्र में चल रहा है।

यहाँ भी एक निश्चित अुनभूति अर्थान्वित निर्धारित है, मुहावरे के अस्तित्व में यह अनुभव ही है कि एक निश्चित एकात्मकता का भाव और विचार का जागरण। जिसका अर्थ है सारगर्भित। यह रूग्णता और नकारात्मक भाव से नितांत भिन्न दशा है, क्या यह संभव है कि अनुवाद में अनुवादक मुहावरे की इस गहराई से पड़ताल कर पाने में सफलता अर्जित कर सकता है? कैसे वो अनुभूति और प्रतीति के शिखर को प्राप्त करे और उस भाव-दशा को आत्मसात करे जिसमें मुहावरे का सत्य और अर्थ बसा है, यहाँ निरंतर अनुवादक को अपनी यांत्रिक विचारधारा से संघर्ष करना पड़ता है, और इस संघर्ष का परिणाम ही उसे मुहावरे की संगत अनुभूति और प्रवाह तक ले सकता है और अनुभव का अभाव इससे वंचित भी कर सकता है।

मुहावरे कृति में रहकर भी रचनात्मक दुनिया और बाहरी दुनिया की चेतावनी और मुक्त संस्कारों से भरे हैं, जहाँ खतरे भी हैं और उनसे सामना करने का साहस भी है, कविता संदेह से मुक्त भले ही न हो, मुहावरे संशय के हर क्षण मुक्त हैं, इसीलिए मुहावरे किसी भी भाषा और संस्कृति में एक इशारे की भाषा है।

संदर्भ-संकेत

1 बच्चन रचनावली – खंड 4, राजकमल प्रकाशन, 1983, पृ.400
2 वहीं, खंड 5, 1983, पृ.18
3 वही, खंड 4, पृ.146
4 काव्यानुवाद कला, मूल लेखक – जॉन ड्रइडन, अनु. अरविंद कुमार, अनुवाद पत्रिका, पृ.126
5 पाब्लो नेरुदा, पृ.23
6 वही
7 अनुवाद संबंधी विचार – महादेवी वर्मा, अनुवाद पत्रिका, जुलाई-दिसंबर 1992, पृ.7
8 पाब्लो नेरुदा, पृ.23
9 कविता में अनुवाद की समस्या, अंक-55, अप्रैल-जून, 1988, पृ.85
10 कविता का अनुवाद, बीसवीं सदी की फ्रांसीसी कविता के संदर्भ में गिरधर राठी, अनुवाद पत्रिका अंक-87, अप्रैल-जून 1991, पृ.73
11 भाषा से मनुष्य का रिश्ता, गिरिराज किशोर, पल-प्रतिपल (त्रैमासिक पत्रिका), जन-मार्च, 1997, पृ.150
12 समकालीन भारतीय अंग्रेजी कहानी, हरीश नारंग, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995, पृ.5,
13 राजेंद्र यादव, खुद कहीं अनुवाद हैं हम, आजकल (मासिक पत्रिका) फरवरी, 1996, पृ.6
14 डा. गंगा प्रसाद विमल, काव्यानुवाद, अनुवाद पत्रिका, अंक-51, अप्रैल-जून, 1987, पृ.33
15 कविता में अनुवाद का रहस्य, रघुवीर सहाय, अनुवादक पत्रिका, अंक-55, अप्रैल-जून, 1988, पृ.5
16 भाषा का मनुष्य से रिश्ता : गिरिराज किशोर, पल-प्रतिपल, जन-मार्च, 1997, पृ.154
17 कसौटी पत्रिका, 20वीं सतीः कालजयी कृतियां, अंक-15, 2004, पृ.397
18 वही, पृ.
19 काव्य में पद विन्यास का महत्व, भाग-2, विनीफ्रेदो नोवोतनी, अनु. अरविंद कुमार, अंक-57, पृ.28
20 काव्य में पद विन्यास का महत्व, भाग-2, विनीफ्रेदो नोवोतनी, अनु. अरविंद कुमार, अंक-57, पृ.21
21 शैली अनुवाद; समस्याएँ और समाधान, सुरेश सिंगला, पृ.6
22 वही, पृ.7-8
23 अनुवादक परिचय, मैथ्यू अर्नाल्ड, सुरेश सिहंला, अनुवाद पत्रिका, अंक-50, अप्रैल-जून, 1987, पृ.113
24 वही, पृ.7
25 वही, पृ.5
26 वही, पृ.143
27 तारकोवस्की, अनंत में फैलते बिंब, पृ.34
28 The Poetic Image, D.D. Levis, p.80
29 रेने वेलक : आस्टिन वारेन : साहित्य-सिद्धांत, पृ.244
30 वही, पृ.243
31 The Shildy of Poetry, p.95.
32 Thomas Hobbes - quoted from 'Ency. Americans' vol.14, p.707.
33 अनंत में फैलते बिंब, तारकोवस्की, पृ.41
34 आधुनिक हिंदी कविता में बिंब-विधान, पृ.51
35 The Poetic Image, p.19
36 Speculations, T.E., Hulme, p.28.
37 Problem of Art, Susanne K. Langer, p.132.
38 Poetic Process, George Whalley, p.145
39 Selected Essays, Allen Tale, p.83
40 रेने वेलक : आस्टिन वारेन : साहित्य-सिद्धांत, पृ.249

41 आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान, पृ.259-60
42 रेनेवेलेक, पृ.255
43 रेनेवेलक, पृ.256
44 रेनेवेलक, पृ.258
45 रेनेवेलक, पृ.262
46 रेनेवेलक, पृ.267
47 रेनेवेलक, पृ.271
48 तारकोवस्की, पृ.99
49 रेनेवेलक, पृ.244
50 अनुवाद के दर्पण में मुहावरों के तेवर – संतोष खन्ना, पृ.79, अनुवाद पत्रिका वर्ष, अंक
51 संकलनकर्ता – मुहम्मद मुस्तफा खां, 'मद्दाह', पं. पृथ्वी राज भार्गव, भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी।
52 हिंदी शब्द सागर
53 "A form of expression, construction, phrase etc. piculiar to a language, a picularity of phrasiology approved by usage, and often having a meaning other than grammatical or logical are." और फ्रेज का अर्थ - "A small group of words expressing a single notion or entering with some degree of unity into the structure of a sentence, on expression, especially caracteristics or idiometic expression A group of words equivalent to a noun, adjective or adverbs and having no finit verb of its own.

केकी. एन. दारुवाला; व्यक्तित्व एवं कृतित्व

केकी. एन. दारूवाला का जन्म सन 1937 लाहौर में हुआ था। और इनकी शिक्षा पंजाब विश्वविद्यालय में हुई। यहाँ से इन्होंने 1958 में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। 1965 में इनका इनका विवाह हो गया।

साहित्य में दारूवाला की अत्यधिक रूचि रही उनकी पहली खोज 1964 में प्रकाशित हुई। तत्पश्चात इनका पहला कविता संग्रह सन 1970 में 'अंडर ओरिएन' नाम से प्रकाशित हुआ। कविताओं के अलावा इन्होंने लघुकथाएँ भी लिखीं। इस क्षेत्र में इनका पहला संग्रह 'वर्ल्ड एण्ड एबयस' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस प्रकार दारूवाला ने स्वयं को साहित्य के क्षेत्र में स्थापित किया। जिसकी मिसाल सन 1983-87 तक साहित्य अकादमी में नियुक्ति और 1984 में साहित्य अकादमी पुरस्कार 'कीपर ऑफ द डाइड' के लिए प्राप्ति से लगाया जा सकता है। इन्होंने न केवल भारत में ही अपितु विदेशों में भी अपनी साहित्यिक ख्याति का परचम लहराया। सन् 1985 के दौरान 'स्ट्रूगा पोएट्री ईवनिंग्स, यूगोस्लाविया और 'इंटरनेशनल लिटरेरी कान्फ्रेंस (इंटरलिट), जर्मनी में भारत का प्रतिनिधित्व किया। इसके साथ ही 1987 में 'कॉमन वेल्थ पोएट्री प्राइज' (एशिया रीजन) में हिस्सा लिया।

साहित्य के अलावा प्रशासन और राजनीति के क्षेत्र में भी इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। सन 1959 में ये भारतीय पुलिस सेवा के पद पर नियुक्त हुए। प्रशासन के क्षेत्र में विशेष योगदान और इनकी प्रतिभा को देखते हुए सन 1979 में इन्हें प्रधानमंत्री का विशेष सलाहकार नियुक्त किया गया। दारूवाला का राजनीतिक सफ़र यहीं पर समाप्त नहीं होता। अपितु आगे और निखरता चला गया। उन्हें सन 1990 में भारत सरकार के अतिरिक्त सचिव के रूप में और सन 1992 में विशेष सचिव के पद से सुशोभित किया गया। आगे चलकर इनका व्यक्तित्व राष्ट्रीय न रहकर अंतर्राष्ट्रीय हो गया। इसकी उत्तम मिसाल 'संयुक्त अंतर्राष्ट्रीय समिति' के अध्यक्ष के सचिव के रूप में नियुक्ति सन 1993 से देखी जा सकती है। प्रशासन और राजनीति के क्षेत्र में दारूवाला अपने आप को और भी प्रतिष्ठित कर पाते यदि वे सन 1995 में सेवानिवृत्त न हुए होते।

दारूवाला भारत में अंग्रेजी कविता के लिए वरदान और अपने समय के मुख्य आलोचक माने जाते हैं। समकालीन कवियों और आलोचकों से तुलना करने पर यह पता चलता है कि वे किस प्रकार इन सभी रचनाकारों पर हावी रहे। दारूवाला ए.के. रामानुजन, निज्जीम एजकी की तरह लिखते हैं। दारूवाला के भीतर और बाहर भारतीयता कूट-कूट कर भरी हुई है। रामानुजन के यहाँ शहरी जीवन का छल, कपट और मिलावट नहीं पाई जाती जबकि, दारूवाला ने इन सभी विषयों को समेटकर अपने काव्य में संजोया है, किंतु ग्राम्य जीवन की छवियों का अभाव अवश्य मौजूद है। ये दोनों एकाग्रता और शक्ति से परिपूर्ण ऐसे रचनाकार थे जिन्होंने समस्या और उसका समाधान प्रस्तुत किया।

दारूवाला के अब तक सात काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से एक कविता-संग्रह 'बच्चों के लिए' दो लघुकथाओं का संग्रह। उन्होंने कविताओं को गद्य एवं पद्य दोनों रूपों में प्रस्तुत किया है। दारूवाला का पहला कविता संग्रह 'अंडर ओरिएन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यह न केवल इनकी परिपक्व काव्य-प्रतिभा का साक्ष्य प्रस्तुत करता है, बल्कि उनकी साहित्यिक शक्ति एवं बौद्धिक शक्ति के साथ-साथ सामाजिक चेतना को भी उनके प्रारंभिक कविता संग्रह में और एप्रीसन इन अप्रैल, (1971), तथा विंटर पोएम्स (1980) में देखा जा सकता है। इसमें आम तौर से मृत्यु, सूखा, राजनैतिक भ्रष्टाचार को प्रस्तुत किया गया है। दारूवाला एक नैतिक कवि की तरह हमारे इर्द-गिर्द की हृदय विदारक घटनाओं का साक्षात कराते हैं। 'क्रॉसिंग ऑफ रीवर' कविता संग्रह सन 1976 में प्रकाशित हुआ। इससे उन के बौद्धिक-सौंदर्य को पहचाना जा सकता है।

इस संग्रह के बारे में माइकेल हल्से का कथन है – "यह एक न भूलने वाली उपलब्धि है। कवि का कार्य जिसकी कला दयालुता और किसी चीज को आत्मसात करने की क्षमता।" दारूवाला की कविता को समझने की क्षमता भिन्न और काल्पनिक है, जिसमें वह स्वयं काव्यात्मक सत्यता को व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत करते हैं। 'विंटर पोएम्स' नामक संग्रह में उन्होंने प्रकृति का चित्रण इस प्रकार किया है, जो उन्हें वर्डसवर्थ, कीट्स और शेली की श्रेणी में ला खड़ा करता है। हंगर-74 कविता

सूखे प्रकृति चित्रण के द्वारा भयावह स्थिति का वर्णन करती है। दारूवाला का कथन है – "मेरी कविता धरती से जुड़ी हुई है और मैं चेतनावश इसे ऐसा ही रखना चाहता हूँ।" वास्तविकता की सच्चाई के अनुभव के प्रति दारूवाला के जवाब की तीव्रता, संकेत करती है कि कविता में कितना पैना पन है।

यदि हम दारूवाला की पहचान और उसके वस्तुनिष्ठ जीवन से उनके लगाव को हम देखना चाहें, तो उनके जीवन से संबंधित जो कविताएँ हैं जैसे – "बमाई पोएट्री" में इसके संकेत देखे जा सकते हैं। दारूवाला के जीवन से संबंधित उनके अनुभव को राबर्ट ग्रेव ने इन शब्दों में कहा है – "एक कवि जिसकी बाध्यता सच्चाई को प्रस्तुत करना है, चाहे वह कितनी ही क्रूरतम क्यों न हो।"

'द कीपर ऑफ द डाइड' शीर्षक संग्रह जिसे साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया, की विशेषता उसमें मौजूद विभिन्न प्रकरण, स्पष्ट कल्पना और अद्‌भुत काव्यात्मक चेतना है। ब्रुश किंग जो कि नॉर्थ आलाबामा, विश्वविद्यालय, (यू. एस.ए.) के प्रवक्ता और साहित्यिक आलोचक हैं, का कथन है – "दारूवाला की कविताएँ बहुत ही ठोस और उपयुक्त शैली में लिखी गई हैं। जबकि यह काफी तनाव और हिंसा को दिखाती हैं और इसे उनके हिंदुस्तान में बिताए जीवन और स्थिति के संदर्भ में देखा जा सकता है। दारूवाला की सबसे अच्छी कविता वहाँ देखी जा सकती है, जहाँ वह खुद को पूरी तरह और मनोरंजक तरीके से पेश करते हैं।"

'लैंडस्केप' दारूवाला का अगला संग्रह है जो उन्नीस सौ सत्तासी में प्रकाशित हुआ।

'ए समर ऑफ टाइगर्स' संग्रह, जिसका प्रकाशन वर्ष 1995 है, आठ साल की लंबी खामोशी के बाद सामने आया। दारूवाला की सीमाएँ हालाँकि हमेशा ही महत्वपूर्ण रही हैं, जिनका इस संग्रह में और भी प्रसार हुआ है। इस में दारूवाला ने विभिन्न विषयों जैसे – रसायन, विद्या और ब्रॉक, एक पत्र नेरूदा के नाम, कवाफी पर एक उड़ान, एक बछड़े का जन्म आदि को शामिल किया है। दारूवाला का यह संग्रह भावनात्मक अनुभूतियों के ओत-प्रोत है। हालाँकि पहले की तरह वे इस संग्रह में इतने तनावपूर्ण नहीं दिखाई देते।

इसके अतिरिक्त दो लघु संग्रह 'सोर्ड एण्ड अबिश' सन् 1979 तथा 'द मिनिस्टर फॉर परमानेंट अनरेस्ट' सन 1996 में प्रकाशित हुए। इसके बाद दारूवाला ने यह दिखा दिया कि वह अभी भी उतनी ही क्षमता रखते हैं। उनकी कहानियाँ उनकी कविताओं से कम प्रभावशाली नहीं हैं। 'द मिनिस्टर फॉर परमानेंट अनरेस्ट' दारूवाला के काल्पनिक क्षमताओं का वर्णन करता है तथा अन्य कहानियों की रचना, ऐतिहासिक कालों और सुदूर स्थलों का वर्णन करती हुई दिखाई देती हैं।

दारूवाला के उर्वर कैनवस में हर तरह का चरित्र चित्रण मिलता है। साथ ही भारतीय संस्कृति के सभी रीत-रिवाज, ग्रामीण उत्सवों और धार्मिक उत्सवों का संगम मौजूद है। इसके अलावा दारूवाला ने 'एन्थालॉजी ऑफ इंडियन पोएट्री' को अंग्रेजी में 'टू डिकेट्स ऑफ इंडियन पोएट्री' सन 1960-82 के नाम से संपादित किया है। इनकी कविताओं का प्रकाशन अंग्रेजी भाषा के ज़दातर गद्यावलियों में भारत से विदेश तक हुआ है। काफी बड़े पैमाने पर विदेशों में कई पत्रिकाओं में हुआ है। जैसे – पोएट्री रिव्यू, लंदन, एँटियोक रिव्यू, डलहौजी रिव्यू, न्यू लेटर्स, निमरोद, कुनायियी, तथा एरियल इत्यादि। उनके संग्रहों का अनुवाद स्वीडिस, मगयार और जर्मन भाषा में हुआ है।

इसके अलावा उन्हें सन 1987 में 'लैंडस्केप' के लिए कॉमन वेल्थ पोएट्री पुरस्कार मिला। अन्य कॉमन वेल्थ पोएट्री विजेताओं के साथ-साथ उन्होंने लंदन में, हल विश्वविद्यालय में, न्यू कैसल अपान टाइम्स – एक्सेटर और क्रिस्टेल विश्वविद्यालय में वक्तव्य दिया। उन्होंने स्ट्रगा, स्टॉक हॉल विश्वविद्यालय एरलॉन्जन, म्यूनिक तथा फ्यूवट में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक सम्मेलन में भी अपनी कविताओं का पाठ किया है – इन दिनों दारूवाला एक उपन्यास के लिखने के अलावा एक कविता संग्रह 'द फायर अल्टर' पर कार्य कर रहे हैं।

मूल शीर्षक : ए समर ऑफ टाइगर्स

अनूदित शीर्षक : ग्रीष्म ऋतु के चीते

छतियों के अंदरूनी गहराई तक हमारा साथ
हृदय की समूची दीर्घाओं के पार
ग्रीष्म ऋतु के चीते की तरह

– पाब्लो नेरूदा

ब्रूटस और बार्खेस

बदला नहीं जुर्म खिलाड़ी बदल गए,
युद्ध का क्षण, शब्द और दस्तावेज।
समय की घड़ियों के साथ;
पुनर्व्यवस्थित करता इतिहास, दानों को,
खींच निकालता है अपने मुरझाए प्राचीन वक्त से;
जो समरूप है बदलते असामान में ,
प्रतिरूप के पीछे;
रहस्य के गहरे हृदय।
ब्रूटस देखा जा चुका और अब
ज्वार को कुछ भी मोड़ नहीं सकता।
ज़ख़्मी एलची इतना खतनाक पाया।
सीजर अपने बिखरे उत्साह के साथ
इस तरह जी नहीं सक़ता।
औरों की मदद के लिए ,
जरूरी नहीं मारक्यूस, ब्रूटस अपनी बाँहे उठाए।

ब्यूनूस आइसेस के ऊपर से अब
जहाँ धड़कनें गर्म और तेज हैं।
एक वधित गाउको को अपने हाथों में मजबूती से
पकड़े हुए चाकू के साथ भीड़ (युद्ध) में,
अपने धर्म पुत्र को देखता हैं,
"मैं हूँ चे ग्वारा" वो पुकारता है ।
शब्दों को न पढ़ो, सिर्फ आवाज सुनो,
कहता है बार्खेस।
गाउको गिर पड़ता है।
प्यार और नफरत और चाकुओं से प्रहारित,
रक्त सने ज़ख़्मों से, बाहर आती है नई ज़िंदगी।
मरता है वह, न जानते हुए कि
वह मर चुका है,
रोमन दृश्य को फिर से पुनर्निर्मित करते हुए।

देवी की स्तुति

ये एक साधारण सी पहाड़ी थी
बकरियों के रास्ते के साथ
और शीर्ष पर एक छोटा सा मंदिर;
एक पहाड़ी जो कभी अँधकारित न हुई
एक सगुन के लिए
या रोमांचित भविष्य के लिए।
और कार्तिकेय
पौराणिक कथाओं का निर्माता
सुरीला भजन गर्वैया
आधी ज़िंदगी बैठा रहा यहाँ
देवी की स्तुति करते हुए
दृष्टि को जड़ता रहित कर रहा।

लोग कहते हैं, गुनगुनाते शब्द उसके पास आए,
एक तार के तारों के साथ।
संगीत आया ऊपर से,
दैदीप्यमान हो उठा मुखमण्डल उसका,
जब गाया गीत उसने।

देवी के मंदिर से,
नीचे पहाड़ी की आधी दूरी पर,
लोग सिक्के गिराते।
दलदली ज़मीन पर जहाँ वह बैठता,
पहली बार घबराते हुए भागे,बच्चे
उसकी उभरी हुई गोल आँखों के भय से;
अक्सर अँधी आँखें बड़ी दिखती हैं।
लेकिन एक तार की धुन कलाइयों से पकड़ता
और उसकी आवाज का सुर
उनको उसके पास वापस खींच लाया।

उसने गाया अपनी स्मृति से
जैसा कि अक्सर अँधे गाते हैं।

उसका आधा संगीत
पौराणिक कथा में हो जाता है समाहित।
उसके कई पद्य खो गए, उसके खोने के साथ।
जो उसने मरने से एक दिन पहले सिलेट पर उकेरा था
पढा गया
जिसे एक पत्र के रूप में।
देवी के नाम;
"एक दूजे से विरह नहीं है
हम दोनों जानते हैं।
या तो मैं सरकता रहूँगा तुम्हारी दहलीज पर
या तुम नीचे आओगी
घबराए हुए स्थिरता पर
जो मैं हूँ
मुझे इतंजार है तुम्हारा
एक ताँत की तरह
विचारवान
एक संगीतमय सुर।

इतिहास

इतिहास हमेशा उत्तर से आता है।
सामान्यतः इसकी नाक गरुड़वत होती है,
और भूरे बाल,
हल्के रंग की त्वचा,
मैं भूल चुका हूँ उसकी आँखों का रंग।
इतिहास हमेशा घोड़ों पर आता है;
अर्द्धपतलून पहने हुए, न धुले शरीर की गँध,
मजबूती से पकड़े हुए शक्तिशाली तनी हुई कमान धनुष
और चिंगारी और चूर्ण व तोड़ेदार बंदूक।

अश्वरोही हमेशा लालायित थे;
उनके नेत्रों की आभा प्रचण्ड
जिसने पहाड़ों के आर-पार सूराख कर दिया।
किसानों ने देखा जैसा कि उन्होंने देखा होगा,
झाड़ियों की मेढ़ और घने जंगलों से छिपे
और उनके खुद के अनसुलझे बाल।
ऐसे उनके पास से एक जंगली
हाथियों का झुण्ड गुजर गया हो।
बेपरवाह अपने गाँव में लौटने पर
हुक्के में उन्होंने कोयले डाले
और भूसे की आग में हाथों को गर्म किया।
जब तक गाँव आक्रमित हुआ यानी
द्यान्यबीज का भण्डार खाली हो गया
और मर्द भार उठाने को लगाए गए
और जवान आक्रमणकारियों ने अपने हाथों को
भागती औरतों के बिखरे केशों पर बढ़ाया।
इसी बीच दो पत्नियों या
तीन पत्नियों वाला राजा
जो अपनी अंतःपुर की नयी संकलनों के
खिलाफ पुरानी पत्नियों को भड़काने वाला
षड्यंत्रकारियों का विरोध कर रहा था,

के पास व्यूह रचने का वक्त भी नहीं बचा।

ज्योतिष ने भी उसे व्यस्त रखा।
हानिकारक राहू को हटाना
और शनि की छाया से बचना
आपके जन्मपत्री की सूर्य बेला में
पूर्णकालिक कार्य हो सकता है।
कुछ टुकड़े ग्रहण करने के पश्चात्
राजा की पैदल सेना और हाथियों ने
व्याकुलता से आक्रमण किया।
तोपचियों ने उनके अग्रसर गति को कुचल दिया
और हाथी दुदुम्भी घोषणाकार बन गया
और आदमियों को कुचल दिया
और दुश्मन की अश्वरोही सेना ने
किनारे से हमला किया कि
और कोई नहीं जानता कि, राजा मारा गया
या पलायित हुआ, इतिहास
हारे राजाओं में रूचि खत्म कर देता है।

लेकिन कोई पगडंडी नहीं थी यहाँ
और वापसी नहीं।
आप पहाड़ों को पार कर आए
और स्थापित हो गए,
और ब्याती हुई भैंसें,
और बाल्टी में फीकी
थन से निकली आवाज हुई
जैसे दूध उसमें डाला गया।
महिलाओं ने बच्चों को ढोया।
साल दर साल, बिना शिकायत के
और बच्चे पशु घर लाए
शाम में
औरतें जलने की लकड़ियाँ लाईं।

लेकिन सूखे पत्तों की आग का क्या
और दमकते गँधक
और भनभनाते पतिंगों के मलिन पारदर्शी पंख
पर सूरज की रौशनी का क्या?
और नगाड़ा बजाने वाला लड़का,

जिसने जमींदार से फजीहत की
और भाग गया डाकू बनने के लिए ?
और गांव की जवान लड़की गायब हो गई।
और बाद में शहर के वेश्यालय में पाई गई ?
और खोई हुई नौटंकी की नर्तकी
जो स्वामी के बिस्तरे में पाई गई,
स्वामी, जिसकी तस्वीरें ली गईं प्रायः
काटों वाले तख्ते पर लेटे हुए;
और उसके पंडे जो उद्वेलित थे
इसलिए नहीं कि उन्होंने देखा इस अनुचित संबंध को
बल्कि इसलिए कि वे कभी जान पाए
उसके पास सामान्य बिस्तर है!
और शिकारी जो जंगल शिकार करने आया
लेकिन अपना दाहिना हाथ और बंदूक गवाँ दी
क्योंकि गायों का झुण्ड उसे सीधा बाघ की गुफा में ले गया ?
यह भी एक इतिहास था
यद्यपि किसी ने लिखा नहीं इसे।

अन्तिमता

शांति से वे अज्ञात नहीं थे
और उनके चित्रलेखन ने कभी युद्ध की बात नहीं की।

हालाँकि उन्होंने दलदल साफ कर लिया था
वे शांति से रहे
मगरमच्छ और दरियाई घोड़े के साथ।
एक शालीन जगह थी यह
जहाँ नदी की रेत
उतनी ही पवित्र थी जितनी कि नदी।
वहाँ हँसी अन्न थी हर जगह,
हर एक अपने स्वयं के चक्की की मिल की रोटी खाते हैं
और सभी बेटियाँ ब्याही गईं जनजाति में।

निश्चित ही; पक्षपात था वहाँ
अगर ज़मीन बेची जाती
जोतने वाले उसके साथ जाते।
गरीब, सूर्य और नदी की पूजा न कर सकते
और वहाँ कलह थी;
ओस एक चंद्रआहुति या एक सौर था ?
और मोतियाबिंद के खुले मुँह का देवत्व,
ये एक देवी या देव थे ?
काला पत्थर सम्मान था – इसने उन्हें अग्नि दी
और तीर-शिराएँ।
जानवर के नकाब ने
उनके सपनों को हुनियाकर संकेत दिया

और जाग गए वो उन्हीं जानवरों के समीप अगली सुबह
स्वप्न और जीवन
एक ही ओढ़ना और एक ही बाना थे।
फिर एक दिन, खुदाई के वक्त, एक आदमी ने
कुदाल चलाकर धातु के एक टुकड़े को पीटा।
और जनजाति के स्वप्नदृष्टा ने सपना देखा
(उसने कभी और कुछ नहीं किया)
कि उसका शरीर प्रकाश से तर है
और गुफामय आवाज ने बात की उससे
सिर्फ उससे
और सिर्फ भगवान के बारे में।

हंसी जनजाति की छोड़ गई
हालाँकि भगवान और लोहा प्रविष्ट हुए।

काँच की धमनी

वह काँच और उसके इतिहास को जानता था
एमेन होरेप के अँगूर के दानों को ;
असूर बेनीपाल के नेनिबेह औषधि;
धोंकनी, मार्बर, पॉन्टील, हर क्रमशः चरण को

जिससे आग ने मिट्टी को पारदर्शी बनाया।
उसने कहा "ये काँच मेरे परिवार में नहीं हैं।"
"मेरे बाप दादा कमियागार व परिशुद्ध के
ताँबा व सीसा के शिक्षण के कारीगर थे;

जल और वायु, पृथ्वी और आग से
ब्रह्मांड के चारों कोनों को मानने वाले।
उन्होंने सारी ज़िंदगी बिता दी धौंकनी और
भट्टी के साथ

वे धातुकर्मी थे, लेकिन रहस्यवादी अभिलाषी थे
कीमिया उनके लिए कठर्बेद तक निकट नहीं थी।
जो संपत्ति के लोभ में फँसी थी
लक्ष्य था कायापलट करना ज़मीन का
खगोलीय में, बीमारी का सेहत में।

अब चीजें बदल गई हैं; दर्शन कहीं फिसल गया हो
जैसे उम्र के साथ दाँत गिर जाते हैं, कुछ नहीं रूकता
क्षय जन्म के साथ शुरु होता है
हम लोहे की तरह जंग खाते हैं;
काँच की तरह बिखर जाते हैं।"

2

वहाँ से होकर हम उसके वाष्पित कक्ष की तरफ गए
जहाँ एक लकड़ी सदृश लड़का फटी बनियान में
और अपने आप में खोया हुआ, लौह नलि डुबाता है।
रेत के लेप में

भट्ठी धुआँकाश से व्यवस्थित
कड़कड़ाती-फुसफुसाती है। लड़के की पतली लंबी टांगें
हल्के लाल रंग में उसकी अंतर्जाधिका चमर उठती है
जब वह लौह नलिका को होठों से लगाकर फूंकता है।

उसके गाल फूलकर गोले हो गए, पूरी तरह फूला,
उसकी गर्दन रीढ़ की तरह और नसों की तरह
गुद्दी तक संघर्ष करता है अपने उत्प्रेरक के साथ
एक गुब्बारा सा फूल जाता है।

नली के दूसरे सिरे पर और
उस आकार में जड़ हो जाता है
एक महक जले धूने की, चिपचिपा जीवश्म,
जादू, अभी-अभी गिरी बिजली हाँडी से उठती है

जैसा कि मिट्टी को,
प्राणों की जगमगाती पारदर्शिताएँ,
आत्मा के रूप में बदली गयी
पहली बार आदमी ने देखा है धुंध की यह अवस्था।

वो पर्दा जो कुछ नहीं छुपाता – ओ चमत्कारी मायादर्पण
कांच ठण्डा हो जाता है, शून्य के रंग में;
क्या वे चिल्ला उठते हैं
"ये वस्तु नहीं ये एक विचार है, एक अवबोधन है।"

अंतिम महामत्स्य

जब महामत्स्य से लाया गया हमारे अधिपति के राज्य में
कैसा होगा शव यात्रा का आयोजन ?
क्या अंतिम चौकी बदली जाएगी, क्या वहाँ ढके नगाड़े होंगे?
एक मरा हुआ डाकू, सरदार, हम कहे गए,
पड़ा हुआ था उसके हर वैभव में कवच, बिन उत्क्षेपित कमीज,
पीने वाला प्याला हमें, अपने वैभव आनंदोत्सव याद कराने को,
ललकार और रणकुठार याद में सके, कंधोन्माद के।
नाव और शरीर को वायु के हाथ दिया।

मगर ऐसा नहीं कि ऐसा ही सब कुछ जाएगा
अंत में उस तिमिगिल को बाहर निकाला जाएगा
गहरे लाल समंदर से, बिंधा हुआ
जहर से सने बरछे से
स्वचालित आरी से उसे तराशा जाएगा
और डेर रक्त और चर्बी से भरा जाएगा
रेती से उसकी हत्या के बाद
नौ सौ अनुसंधान के लिए
जापान में बड़ा व्यापार है।
पांच करोड़ सालों के लिए तिमिगिल ने समुद्र में यात्रा की
समुद्र के जैसे अंतस्तल जैसे ज्वार भाटे
जैसे समुद्री चट्टान जैसे चूर्ण प्रावगर जैसे समुद्री पौधे
अब वध की खोज
कैसे उतने लंबे जनम तक जीवित रहे वे

जब अंतिम महामत्स्य हमारे स्वामी की देखभाल में आया

मक्खियों की भनभनाहट से जागना और एक प्रसरण
समुद्री परिंदों के जैसे पहले कभी नहीं थी
और समंदर का रंग गहरे लाल रंग में बदल जाता है
वे आश्चर्य करेंगे अगर यह सगुन है या चमत्कार
न तो मैंने बर्छे से महामत्स्य के किनारे को काटा

समुद्र देव, उसकी आँखों को रंग, नमकीन जलन
उसकी दाढ़ी हो गई प्रणाल, उसके फैले हाथ
पूछने के लिए कि उनके लिए भण्डार में क्या है?
बहुत रिस्तारे के जैसे पहले
भाटे पर चिंता को और जहाजों की दिशा की रूपरेखा
उतना ही संख्या में हिमशैल, कम या ज़दा
और अधिक तेल जरूर चिकलती है और
तेल पोत बेड़ा और अधिक वायुयान वाहक
और पनडुब्बी महामत्स्य नहीं।

मोहम्मद अली पासा

हम एक गबल के किले में थे
और सैन्य संग्रहालय अंदर स्थापित था;
विगत निशान पर चले जो दहमोस व रोमसेस को दिखलाया।
रथ के पहियों के नीचे शत्रुओं को रौंदते हुए
युद्ध के मध्य युगीन अस्त्रशस्त्र वहो थे
तलवार और शिलाप्रक्षेपक से लेकर उल्का और बंदूक तक;
और एक भित्तिपातक जो 'अल कबाश' की तरह जाना गया
पिछले इतिहास से गुजरने के बाद, कम से कम
राजकीय वृतांत, कुचले जा चुके जिहादियों से
और लुईस नवॉ व बंदी था सलादिन के सामने नए आंदोलन तक 50 में यमन
और याम किप्पुर युद्ध, होते हुए हम आए।
मौहम्मद अली पाशा की मस्जिद
और प्रदर्शक हमें महान आदमी के घर ले गया

मोहम्मद अली पाशा के घर आपका स्वागत है।
वह खुद वहाँ 19वीं शताब्दी में रहते थे
और मिश्र को उसी शताब्दी में शासित भी किया।
ये दीवारें मजबूत थीं लेकिन पाशा उससे भी ज़्यादा मजबूत ;
मिस्रयों के साथ सख्त और मामेल्युकियों के साथ सख्त ।
बेगम के साथ भी सख्त लेकिन वह सिर्फ मान्यता ।
आइए, कढ़ाई कक्षा अंदर कमरे में है।
देखिए अनेक हाथ कितनी तेजी से काम करते हैं, जैसे
जेबकतरे, वहीं लेते हैं जो खुदा देता है
खुदा वापस नहीं देता जो जेबकतरे लेकर भाग गया।
ये कढ़ाइयाँ हम साऊदी अरब भेजते हैं।
पहले भेजते थे इसलिए कि साऊदी गरीब था।
अब हम भेजते हैं क्योंकि साऊदी अमीर है।
अब आपको भोजन कक्ष देखना ही चाहिए। उन दिनों

भोजन कक्ष और बैठक कक्ष अलग न थे
जहाँ आप खाते हैं वहीं बैठते हैं और जहाँ

बैठते हैं वही खाते।
वहाँ मामेल्युकिस थे उन दिनों, अत्यधिक हठीले,
जो किसी की नहीं सुनते, न तो इस्तानबुल में सुल्तान को
न मोहम्मद अली पाशा को काइरों में!
आप जानते हैं उन्होंने क्या रखा? बुरे विश्वास और रखैलें;
बुरा विश्वास लोगें के साथ, बुरा विश्वास ओटोमन साम्राज्य
के साथ, बुरा विश्वास मोहम्मद अली पाशा के साथ।

अतएव पाशा ने मामेल्युकियों को रात्रिभोज पर निमंत्रण दिया
ये लकड़ी का सोफा जहाँ आप बैठे हैं, देखिए खुलता कैसे है?
इसके अंदर वे बंदूक रखते थे, कई बंदूकें
फिर ढक्कन बंद किया, कोई न जान पाया बंदूकें कहाँ रखीं गईं?
उसने बाल्टागीस को बुलाया, गोश्त और खाना परोसने।
आप जानते हैं बालाटीग्स? लकडहारा;
लोग जिन्हों अदा किया जाता था कुल्हाड़ी चलाने में।
पाशा ने शुरु किया उन्हें मेहनताना देना बंदूक चलाने के वास्ते।

तब मामेल्युकियों ने भोज किया और कॉफी खत्म की
लकडहारों ने बंदूकें उठाईं और मामेल्युकियों को खत्म कर डाला
केवल एक बेग भाग गया, बाकी सारे मारे गए
मोहम्मत अली पाशा बहुत चतुर (दक्ष) शख्सियत।

मालवाही पोत

यह सभी, रतंग और लहर
कर्कश बहाव हवा का
कसे हुए पँखे में
देशांतर छोड़ने लगी किश्ती ज्यों ही
अफ्रीकन काकातुआएँ मकर से
काटने लगीं चक्कर
अबूझा था शोर का आवेग
परिंदे दर्दमंद थे
रंजीदा थे बटेर
शाही परिंदों के नजदीक हुए जब
परिंदों की चमक से भर उठा पिंजरे का कोना

एक स्यावर्ण मोती गोताखोर
दाखिल हुआ किश्ती में चीते की तरह
जहाजी के ख़्यालों में उभरा
एक काला लघु चित्र
गड़बड़ाते हुए
पोत स्तंभों को एक ताजे हवा के अंधड़ की तरह
वह सीधे सपनों में जा पहुँचा
राजसी रखैलों के बीच अक्षत यौवना के संसर्ग में

छोड़ चुकी थी
प्रथम यौवन और तट एक ही वक्त में
अपने हाथों और पिंडलियों पर रगड़ती हुई
चंदन की छाल, देती हुई मुख को वनौसंधि बौछार
उस यात्रा में हर रोज

बटेर की तरह उदास है गुलाम
भारी हैं जंजीरें
टखनों पर चुभती हुई
जब-जब गुस्साता है समुद्र

रखैलों का मिजाज बनाए हुए
बीजांकुरों के भरे बड़े थैलों को
बमुश्किल था सीलन से बचाए रखना,
गुलामों के साथ बेपरवाह थे वे
नमकीन हवा में
खाँसते
थूकते
और कुम्हलाते

तटबंध आते ही
दुखी होते पोतवान
आधा फेंकना पड़वा बाहर संतुलन
एकदम कौंधती ----
जब पचासों बार जाना पड़ता ऊपर
बस समुद्र पारवी रह जाते शोष
मरते हुओं की मुक्तगंध के पीछे

द्वीपाधिपति ने क्षमादान दिया
मृत समुद्र पारियों और दासों को
आसन्न मृत्यु को
दो अधनँगी रखैलें उठाए हुए थीं
चंदन लेप का कूड़ा
चंदन गँध सूँघता ले चला
द्वीपाधिपति उन्हें अपने हरम में

निशांत की यात्रा

नाजुक दूब झूम रही है
नदी-तट पर
पाल, जहाज पूर्ण एकांत है
लंबी मस्तूल पागिरिफ्ता है
नदी और रात के प्रति।

पुच्छलतारा गिरता है अनंत में
चाँद और नदी की हलचल के साथ
बह रहा है।

जवां और शोख नदियाँ
शोख रातें बह रही हैं।

मेरी कविता फ़क्त
दीप की लौ नहीं है
जो रात को रौश्न कर सके
नामहरूम और अधेड़ सी।

बिजली की एक धार बहती है
दर्या और फलक के दरमियान
मैं, एक तन्हा समुद्री पारखी सी।

चिलम

गर्मी गुजर रही है
ऊँची पहाड़ियों से होकर
एक परिंदा कहीं गाता है
बादल छील रहा है फलक से छाल।
रंगों में कई रंग, ऊँचे चारागाह,
झोपड़ियों, लकड़ियों, घास में
फलक से गुजरते हैं निगाहों में।
संक्षिप्त रेखा मुड़ती है,
और ऐंठती हैं
फिर सीधी होती है
और ऐंठती है
हवाई छतरी की तरह खुलते विचार
बह जाते हैं दूर कहीं
ज्यों लकड़ियों में ले जाती एक दुरूश्त हवा।

नशा असीम आनंद है
आनंददायक है नशा
नाजुक बदन लंबे समय से
ख्वास लेने में मशगूल है।
शून्य चूसते हैं
गिरते हैं दूसरे शून्य पर
रंगों के जत्थे या किसी रंग से लगते हैं
धड़कना शुरु आँखों की रक्तिम रगों में ।
व्यंग और हस्य की जुंबिश
एक ऊँची तरंग-गुच्छ सी वह

संतुलित छलाँग एक धार पर हुई
मूर्च्छा की गमहित और चीजें रौशनीमें
दीखती हैं धुँध भी
जब कनीनिका घूमती है।

गर्मी गुजर रही है
ऊँची गुजर रही है
ऊँची पहाड़ियों से होकर;
एक परिंदा कहीं दीदएतर है
बादल उतार रहा है फलक से छाल।

जार्ज ब्रॉक को

आकाश को जरूरत नहीं
शीर्ष पर होने की।
एक नीला पट
बनावट में खुरदरा
कुछ आप महसूसते;
आकाश के मजबूत
या पारलौकिक।
फिर तारे को रंगे
वापस व जाएँ बहुत दूर
एक मृत मिटाने वाले को।
कौन चाहता है कुछ दग्ध नर्क के बाहर?
डेविड का तारा
ऐसा करेगा।

जब आप एक चिड़िया रंगते हैं
हमें याद है
यह शब्दों में पुराना है,
जवान है तो केवल वायु से
या जल या टूटती उल्काओं से
बहुत अधिक पँखों के साथ या नीचे ।
क्या फर्क पडता है अगर बैसाखी हों पैरों के लिए
या पंजे खुजाने को एक तिपाई हो
रंगाई या उड़ान के अलग नियम हैं।
जब पूरी शिददत से
चित्रों की खिड़की से विस्फोट होता है
आकाश में
कल्पना करें चिड़िया कैसे उड़ेगी।

आप उम्मीद के साथ पहुँचें
और चारों ओर की जगह
और अपनी मछली को रेखांकित करें

रेखा को लड़खड़ाने दें
आँख को बिंदु पर टिकाकर
खोजें
आसमान की नीलिमा
सागर का नीले लाजवर्द में बदलते।
किसी भी सूरत में
एक समुद्री शैवाल का कोई स्वर, समुद्र से आते।

सागर और आसमान के एक चौकोर पटल पर
तारे मछली और स्थिर पंछी।
अपने तूली और आँखों और पतवार को आराम दें।
ऊँचा उड़ने दें पतंग और कल्पनाओं को
कोई परिदृश्य एक भी कोमेक की कीमत नहीं रखता।
वही खिड़की प्रकाश के साथ घुली नीलिमा

एकदम सघन और फलक पर
ब्रॉक का हस्ताक्षर।

एक बछड़े का जन्म

जब पैदा होता है बछड़ा
रात अक्सर उजास होती है।

यहाँ रात सिलेटी और छोटी है
तारे ऊपरी दिशा में रेंगते हैं।

ठण्डा स्पर्श सीसे में पहली दफा
संगठित हो रहा है घास के ऊपर।

घास के ढेर पर गुच्छमगुच्छ
बछड़ा लेटा हुआ है।

किसान चरमराते हुए दरवाजे से देखता है
उसके (घोड़ी) के खुर को बेचैन-घूमते हुए।

वह चारों तरफ घूमती है काटते हुए चक्कर
फिर भी दुःखी नहीं है।

फिर वो लेट जाती है अनाज के ढेर पर
बछड़े ने चलना शुरू किया है।

जल्दी ही एक थैलेनुमा खिलौना रूपी घोड़ा
और खून नीचे कीचड़ में पड़े होते हैं।

चार पतली टाँगें दिखाई देती हैं
इस अँधेरे के वर्ष की अंतिम बेला में

कुछ देर के लिए टांगों में
नहीं हुई हलचल, बछड़ा प्रतीक्षित है माँ कहती है।

कहाँ अँधेरा है और कहाँ ठण्ड?

माँ की सांस की गर्माहट कर रही है बछड़े को गर्म।

फिर आँखों को चाटकर करती है साफ
साफ हो जाती है आँखें।

हमेशा, जब बछड़ा पैदा होता है
रात उदास होती है।

चूहे की फांस

गहरे जलमार्ग से गुजरते वक्त हम कभी-कभी पाते हैं
खुद को एक दम खुले में, जहाँ आप अवलोकन कर सकते हैं
सूर्य को जल-तल के नीचे एक टूटे बल्ब की तरह कांपते हुए
हम ठहर कर उसकी और प्रशंसा नहीं कर सकते, हम में धैर्य नहीं है।

यह उन्मुक्त वितान कर गया उन्मत पागलपन या मैं कूद गया पास वाले
काले सुराख में जब समय आया जाने का
हम सांपों की बांबी में उतर आए, लेकिन सांप जा चुके थे
सदैव के लिए धरती दरक उठती है, धरती टूटे कांच की तरह।

जब ज़मीन गरजती है आसमान से भी अधिक,
और अनस्तिक समूह धूल का झोंका और पत्थर;
और छोटी, लहर, काली उठालने से ज़मीन के अंदर,
आती है आधे गर्जन और आधे विलाप के साथ।

महिलाएँ धीरे-धीरे छितर जाती हैं:
घोर विलाप करने के बाद शांति से
एक-के-बाद-एक। वेधनी पत्थर वर्षा से सस्ती चीज
के लिए। जो बगैर की 'हम कैसे उछल पड़ते और जाते हैं ?

कहाँ गहरी ऐंद्रियता और कहाँ रात की सुलगती पुकार,
जैसे ही हम ऊपर आ गए आसमान थोड़ा झुक गया
लेकिन भू-पटल नहीं। हर ने दरारों को गौर से देखा
शायद और विपत्ति हमारी गर्दन दबोच ले।

भय और पलायन कि चलते हम रबर की टेक से चिपक गए
वहाँ अचानक ही मच गया शोर हालाँकि
आसमान ने लरजना बंद कर दिया और थाम लिया धरा को।
हमारे नुकीली नाक और हमारे निशब्द कदमों ने आतंक फैला दिया ।

जैसे ही हममें से कुछ हो गए बीमार
गतिज विस्फोट में हमने पतवार चलायी।
टेढ़े-मेढ़े उतार-चढ़ाव पथराए और धूसर
मलिन झुग्गियाँ आते चले गए

हर राह, अपने भारी बोझ के साथ, चल देती है गवँई पगडंडी की ओर
नीचे तबके के लोग रेल की चमकदार पटरियों पर, पीपल के पेड़ तले,
हनुमान की सपाट प्रस्तर मूर्ति
रिक्त होता-जाता शहर एक प्रार्थना की मुद्रा में खड़ा है।
लेकिन चूहों की फाँस के बाद बिल्लियों से प्रार्थना का क्या मतलब?

सपने

स्वन में देखी थी नरकाग्नि,
या स्वयं को वहाँ देखा।
तुम्हारे अनुभवों में ,न नींद में,
वह सोच में डूबा है ,क्या तुम ऐसे वाहियात सपने दखते हो
(शक का कीड़ा पहले ही बुरी तरह सता रहा था
यह पूछता कि
और उनके बारे में सोचना
कैसा लगता है स्वप्न,
क्या दौड़ सकते हैं एक-दूसरे के इर्द-गिर्द)
एक ही घिन्नी में बंधे
धुंधले पड़े अतीत की स्मृति को, काफी दूर से
बड़े हौले से मस्तिष्क के पिछले दरवाजे पर
दस्तक दी किसी ने

तीखी धार सी यह आवाज
मानो कोलाहल की नली से निकली थी ;
ये कोई पापाग्नि नहीं थी
जिसमें वह भूना जा रहा था।
अब कौन जलता है भला
निश्चय ही इन दिनों, कौन किसके लिए अब जान देगा?

इन दिनों इस दौर में ऐसा नहीं जान पड़ता
कि इस पापी आग के स्वप्न से कोई सम्मोहित होगा
तब मैं ही क्यों?

उसने सोचा
भला मैं क्यों ठिठक पड़ूँ ?
(उसके विचार ने अँधेरे को टटोला
धुएँ से अटी
और सुलगते कोहरे से गुजरते हुए)

उसने देखा गिरती राख के पीछे चिंगारियों की लड़ी;
और वह जाग पड़ा,
फिर अपनी तरफ मुड़ा,
उसने सुना कोई जोर-जोर से दरवाजा पीट रहा है पिछवाड़े का;
और पाया छत और बल्लियाँ जल रही हैं।

बचपन की कविता
(कवि ए. के. रामानुजन के लिए)

थोड़ा कीमती है बचपन वहाँ एक बार
आप भूल गए इसे। आग नहीं आँच सकता कोई।
भाषा में, एक की अनुपस्थि में, एक रिक्तता
उतनी ही अच्छी है जितना कोई और।

तुम याद क्यों कर सकते? मेरी पत्नी पूछती है,
'मैं कर सकती हूँ'
मैं जवाब नहीं देता, वैमनुष्यता को अलग रखने की चाह
मेरी विस्मृति में मैं अनन्य नहीं हो सका।
उचित रूप से बचपन एक साधारण वेदना है।

थोड़ी सी यादें लयालपुर की हैं।
अब फैसलाबाद, राजा के बाद जिसका नाम हो गया।
अगर इदी आगिन ने ज़दा बड़ा चेक हस्ताक्षर किया होता
तो वे इस गर्द भरे कटोरे का नाम उसके बाद रखते।

पहली यादें; धूल की आँधियाँ अभी तक मैं महसूस करता हूँ सर शहतूत का पेड़
जिसकी घनी छाया में हम फल बहुत ज़्यादा खाते थे
नहीं करता मैं स्मरण पतंगों को, चीटियों की कलाई, पंछी
कोई और पेड़ नहीं, न तना, न ही शाखें और न जड़।

सैकरेड हार्ट्स विद्यालय और इतालवी पादरी,
गज। दाड़ीदार, तगड़े
युद्ध ने उन्हें युद्ध का कैदी बना दिया। जब वे बांधे गए
स्कूल कांटेदार तारों से घिरा था, पादरी ने मुझे बाहर खींचा।

भगवान ने आर्यों से हमें दिया आर्य स्कूल,
पास के अनाथालय बिखेरे छात्र

फुंसीदार चेहरों और बैंगनी धब्बों वाले।

'गाओ' 'पदान्स इसलिए छोड़ा वे सोचते अश्लील हैं ।'
गाने लगा मैं गीत ।
माई फेअर लेडी' का बार-बार दुहराना, उन्होंने सोचा
और पहुँच गए, (शुक्रिया भगवान),
अपने खुद के अरूसंधियों के लिए।

घास पर फैलाई सूखी बोरियों पर बैठ गए हम
दाई टेक पर एक तख्ती खड़ी;
पंख के कलमों को स्यापात्र में डुबो और
अंकित किया उर्दू सुलेख।

गोलाकार के बदले में कलम छड़ी नहीं थी
और अर्धवर्णमाला के वक्र शमशेर
मैंने वंदना और धब्बा उत्पन्न किया,
लकड़ी के तख्ते पर शतपक्ष को जलाया।

जब अध्यापक ने सोना चाहा वह चिल्लाया 'पहाड़ा'
हमने सीखा इन्हें रटकर एक अंतहीन बोरियत व आलस में
यह याद करना नहीं बल्कि स्मृति लोप का
मैं झुककर निंद्रा में जाता बिना कराह के

अध्यापक चैतनदेव ने तुर्रा और साफा पहना था
आप उसके थोड़े तिरछे नेत्र गोलक के साथ गोल्फ खेल सकते।
जब आप सोचते वह किसी और ओर देख रहाहै
आप उसकी विकृत नजर से गिर गए
वह आप थे।

हाथों से इसे एक बर्तन का घुमाव दिया
और पीछे के गुदे पर उसने अपना मुक्का मार दिया।
आप ज़मीन पर छटपटाए हाँफते हुए कुछ समय के लिए

और फिर निष्क्रियता से तड़पे एक ख़्याली बोरे की तरह।

कंवर राम ने उसका स्थान ले लिया, उसने सलवार पहना
काफ़ी चौड़ा राह को अवरूह करने को।
अपने द्विशिरस्क और गणन में मजबूत
स्थानांतरण मेरे लिए कोई अच्छा शगुन नहीं था।

मेरे लोहे की तख्ती ने अपना ढाँचा छोड़ दिया
जैसे मैं टूट पड़ा। उसे अपनी बिखरी उंगलियों से
मैंने महसूस किया उसका क्रोध
और भाग लिया
तख्ती को मूसल की तरह फेंका गया
सख्त मांस और नस मेरी ऐड़ी के एक इंच ऊपर।

और मुझे एक हफ़्ते के लिए नीचे गिरा दिया।
एक और याद लंबित है
एक पतंग झपटना जो गिरा देता है
मेरी उंगलियों के बीच फँसे रोटी के एक टुकड़े को।

मैं पीठ पर लादकर ले जाया गया मोहर्रम देखने
नीचे जाते बाँके गोल बाजार को।
जंजीर के शिकंजे में चाकुओं को पीठ पर छनकाकर
खेला उन्होंने। मृत संत ने देखा इसे
कोई दाग नहीं छोड़ा उन्होंने।

दो साल पहले मुसलमानों से पूछा गया दूसरे देश के लिए ;
तरीका, आपकी रोटी के दूसरे टुकड़े तक पहुँचने के लिए
हमने लयालपुर छोड़ दिया जूनागढ़ के लिए।
दो भाइयों को पीछे छोड़ दिया अब एक नहीं है।

वे नर्क से गए, वो हैं, पंजाब, सिंध, राजपूताना ;
हर वक्त जनेऊ दिखलाते हुए एक अलग पक्ष साबित करने को

न पहले हिंदु, न बाद में मुसलमान
एक ने जगह ली एक वेश्यालय में
किस्मत वाला आदमी, मेरी चाहत,
मैं उसकी जगह होता।

लेकिन उन्होंने जो मुझे तब कहा, अभी तक जीतंत है
1947 की गर्मियाँ
तलवारधारियों का दो मील लंबा जुलूस,
नीले विहंग वस्त्र और धूल का एक प्रयास
स्वर्ग से अनिष्टता की तरह

और जुलूस रेंगता रहा एक अक्षत सोफे की तरह
ज्वलंत नारे, निकली हुई तलवारें
'अखंड रहेगा हिंदुस्तान'
नहीं बनेगा पाकिस्तान।

लेकिन मैं कहीं नहीं था, जुलुस मेरे लिए
एक कपड़े का एक लंबा धागा
बरछे की नोक की तरह शब्द था
कोई क्या कह सकताहै जब छाया जीवन में है

और वास्तविकता मलिन पाती है
इसके परे मुझे कुछ याद नहीं
यादों के दरवाजे बंद कर दिए गए
कभी-कभी मैं दुखी होता हूँ खे गए इन चेहरों के लिए
वह तंग करने वाला भूतकाल, अब दुःख से भूतों से विहीन है।

जार्ज कीट की दुनिया

मुझे ढूँढ़ती रही साँवले गोपाल की नजरें
लक्ष्य साधे घूमती बंदर की तरह।
मैं छः कदम बाएँ मुड़ा
वो छोटा देवदूत जिसमें नेत्र करते रहे पीछा
एक काले उल्टे हुए त्रिकोण की भाँति
प्रतीत हुई पुतलियाँ
फिर भी तने हुए धनुष-सी ढूँढ़ती रही मुझे।
क्या मैं किसी भुतही गुफा में घुस गया हूँ?
नही! यह मैं ही हूँ एक भूत
ज़िंदा लोगों के बीच एक प्रेतात्मा।

क्योंकि हर चीज डरा रही है मुझे
चंदन के रंग का अंग भ्वार के साथ थर्राता है।
तोते की चमड़ी से भी ज़दा चमकीला हरा है
पीला खोज है प्रकाश के लिए।
पुआल की चटाई मांस की गर्माहट की आवाज
से थर्राता हो
और संवेदना को पीछे छोड़ जाता है
बिल्कुल एक इत्रदान के पुरबे की तरह।

कोई पीड़ा की गहराइयों में घुसा
जैसे पार्वती की मृत्यु के शोक से पागल।
महादेव का तांडव
जहाँ पाँव तो दिखाई नहीं देते मगर,
फिर भी तुम सुन सकते हो उस लौकिक
दुर्दशा की वृत्ताकार लय
तीन गायब हुई आँखें बँधे हुए जटा का झटका
उन्मादित मस्तिष्क का अग्नि चक्र है।
तुम इस घूमते हुए चक्रवात में फँस जाते हो।
मुड़ जाते हो आँख से मुंह तक, धब्बों से
भरे दुःखपूर्ण वेदना की रेखाओं की ओर।

एक चेहरा जो काँपता और थर्राता है प्रकाश
के एक पुँज की तरह
और उसके कंधे के चारों ओर एक शक्ति
का एहसास और उसने चारों तरफ....
उसकी छातियों का यौवन चाह थी।
और जब आँखें उसके जिस्म को कलंकित करती हुई देखती हैं।
तुम उसकी अरूसंधि का आलिंगन कर सकते हो।

इन चुभते हुए अंगों के जंगल में
कोई जाँघ, उदर, नितंब की गोलाई के विरुद्ध पेलता है।
ये जो मांसल मूर्तियाँ हैं औरतें आराधना की
निकाला गया है जिन्हें धार्मिक शास्त्रों से।
उनकी छातियाँ उभरती है ज्यामितीय समतल दुर्गम जगहों से,
कुल्हाड़ी के जैसी तेज नाक, नीचे खिसकती है
एक संगरमरमरी चोटी की तरह।
और आँखें उनकी आत्मा की खिड़कियाँ हैं
कामुकता से आधी सनी हुई।
पलकें कछुए के कवच सी भारी है।

उत्साह के बसंत से जो पंक्तियाँ आती हैं
उनमें एक सुरीला गान होता है।
यहाँ काले देवदूतों के लिए कोई जागृत नहीं है,
और न त्रासदीपूर्ण सकारात्मक प्रतीकों
से सना हुआ धब्बों का कोई क्षितिज है।

सारा दर्द खत्म हो जाता है लौंकीनुमा जिस्म
के स्वादिस्ट गुद्दे में,
शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति भटकते हैं,
आत्मा के इस अनौपचारिक दक्खिनी समुद्रों में
जहाँ रात के काले जहाज कभी भी
झंडा नहीं लहराते।

ओस्लो की कतरने

ये दुःस्वप्न खौला न पाए इसका खून;
नीली आँखें, भूरी दाढ़ी, लंबे सुलगते बाल
और सर्पीले जबड़े ये सब भी अलग
उसके, भगलाने की विशेषता का कारण।
वह जाने वाली लकड़ी की इस भाषा में गुम हो गया
हर मोड़ पर वो पार आया
एक दूसरे को काटती दो सीधी बदलती लंबी राहें
बाशिंदें यहाँ कहते हैं क्रास
धीरे कदमों से तह के साहचर्य में चलती रही,
झुलसे छितराए समुद्री घास परत,
काले बालों वाली मत्स्याँगना;
वह ठहरा पल भर, स्वयं से विमर्श को
उसने क्या किया वहाँ;
किनारे फिसल जाने की शंका
भुर भुरी बर्फ अथवा काई का आवरण
और प्रेरित करती चौंका देने वाली उड़ान
एक वयोवृद्ध खेत – बड़े पंखों वाली समुद्री चिड़िया।

शिशिर काल

निर्जन है फजा,
कहीं कोई संकेत नहीं
खूँटे से बँधे या तार से बँधकर
नील नदी कल-कल शब्दों के साथ
बह रही है।
फराख डूबी हुई जिल्फे किलीसा की उतराती हैं।
वे हैं, ब्रह्म, विष्णु महेश
दुनिया निगाहे हस्रत है
मर्त्युलोक के प्राणी देते हैं
जीर्ण-होने का अभिशाप
और सभी दरख़्त एक अनदेखी आग में झुलस जाते हैं।

असमान टुकड़े

दुर्घटना के एक माह बाद
तीखी पीड़ा के साथ
मस्तिष्क लोक में
असमान कण एक-दूसरे से टकराए
और जाग पड़े नए जीवन की तरह
एक नई स्मृति में फिर,

डॉक्टर ने कहा लौट आएगी पूर्णता;
नशे मुक्ति में समय लगेगा,
लेकिन उसे व्याधि से मुक्ति के लिए, किसी का वरदान चाहिए।
उसकी पत्नी साई बाबा के रास्ते चली।
लौट आया उसका सामान;
लौट आया तख्त और क्रॉन्स की आरामदेह कुर्सी,
कर सके जिस पर विश्राम,
बस एक मेज थी, एक टांग विहीन

याद आया उसे चिड़िया की छाया
जो कि वह घर के परदों के साथ लाए थे
चटक गौरैया – जो अँगूर की लता में देद कर रही थी।
वो औरत जो कि उससे दूर जाने वाले की पत्नी है
तुम हँसोगे! यह यादकर के,
उसने पूछा ताकि वे प्यार के बारे में जानते हैं
उसने अपने पजामे की डोरी को टटोला
गुलमोहर पेड़ जो उसके बागीचे में था
किसी भी पेड़ के बारे में नहीं जानता था
चिड़िया के बारे में क्या कहना था उसे?
जिस चिड़िया के बारे में उसने कहा,
वो उड़ चुकी थी।

टुकड़ा

नीली आँखों वाली उसकी निगाहों में थी
पहली मुलाकात वो शिकस्तः जबाँ था।
बाहों में बाहें डाले, अधरों में अधर सिमटे।
दो पहर गुजरे;
कमर पर स्पर्श किए महसूस हुआ
उसका झिझकनो
बहालेकि वह खो गई
अपलक उसकी निगाहों में देखा
एक गंधक से भरी, एक कुहासे सी।

पाब्लो को लिखे पत्र

इस तरह हुआ
प्रतिष्ठितों का पतन
ज्यों कीड़े खाए हुए कीचड़
में लिपटा/सना चोंगा
– क्रांति : पादलो नेरुदा

पाब्लो, तुम यकीनन जानते होंगे जैसा कि
वे हमेशा अपने प्रतीकात्मक चोंगे में गिरते हैं
(सीजर, निःसंदेह, अपनी कमर के बल गिरे)।

जब वे गिरे,
मानो कि हृदयाघात हुआ
जो जुआ खेलता है सत्ता की जमापूंजी पर,
वह हमेशा पकड़े जाते हैं जैसा कि तुम देखते हो
अपने धनाढ्य द्वार पर।
हमेशा देखा जाना चाहिए उसे पिछली घटना के अनुरूप
फिर भी,
उस महिला के बारे में आप नहीं सोच सकते
बिना उसके जूते की आहट के,
क्यातुम अभी....?
और न ही पहलवी राजा के बारे में सोच सकते
जो, वर्षा-कण में खड़ा हुआ। 'परसे पोलिस' नामक
जगह पर बिना तंबू शहर में।

और तुम्हारे साथ कोई झगड़ नहीं सकता, पाब्लो
ज्यों तुम उस मुर्गी के मल के लिए झगड़ते हो फ्रांको,
या मरे सामोजा के चूहे पर
दलदल में गोली मरने (तुम्हारे ही शब्द लेंगे इसके लिए)
और सोने के दाँत के साथ उगले
(तुम्हारे शब्द पुनः, मैं उसके दंत-चिकित्सक के पास नहीं जा सकता)।

हम नहीं जानते किस पर भरोसा किया जाए
हर कोई रक्तावरोधक को मोड़ देता है अवसर पाते ही।

क्रांति के समय जिसने खाया, जो भी, वह अलग नहीं
पचास साल के बाद भी।
काकेसियस एक बड़ा ही विकृष्ट तानाशाह हुआ तुम्हारे देश में।
लेकिन मैं उसकी बात करना चाहता हूँ
"जो भूख को पवित्र पाठ की तरह जानता है",
जिसने उन लोगों को उक्साया बार से कंधे तक
कुल्हाड़ी से भाले के जोर पर उन्होंने तीड़ी दीवार।

वह बर्लिन की प्राचीर है जो गिराई गई।
पश्चात, अब प्रेस इसको करता है उजागर
जैसे सोडोम और गोमोराह गिरे।

तुम जानते हो प्रतीक टूटते हैं कब,
ज़िंदगी भर के लिए शुरू होता है भूकंप
जैसे फटती है कोशिका और उसकी प्रतिध्वनिक
सुनायी देती है ग्रह के दूसरे छोर तक।

नहीं जानते तुम
कितने उच्च तकनीक के क्रेन्स लाए गए
लेनिन की प्रतिमा को नष्ट करने को।
(रसिया के पास पर्याप्त दालान/पिछवाड़ा नहीं था)।
अब वह अत्यंत वेदनापूर्ण बात है जो कि
चित्रकार का स्वप्न था, लेनिन के बारे में,
बकरे की तरह दाढ़ी, और गंजापन, माथे
का गुंबद की तरह हो।

स्तालिन ग्राद की कविताएँ अब तुम्हें लत्जित करेंगी,
(उन्हें तो तुम्हें लज्जित करना चाहिए था पाब्लो)।
तुमने इसे वास्तव में बोझिल माहौल बना दिया;
"रात में किसान सोताहै, जागता है और डूबता है
उसका हाथ अँधेरे में ऊषा से पूछता है।"
कैसे तुमने उलजुलूल लिखा पाब्लो?
कोई भी अपने हाथ अँधेरे में नहीं डुबाता

और कोई पिल्ला ऊषा को संबांधित नहीं करता।

और कोई तुम्हें संदेह का लाभ देगा
इसके लिए जोकि, किसी अन्य समय में रचा गया
और यह सब जो किसी और युग में रचा गया।

तुमने बमों की बात की
और वियतनाम में हत्यारी गैस की
लेकिन 1968 पेरागुए के बारे में कोई शब्द नहीं
1956 के बुढ़ापेस्ट के बारे में भी.....,
जैसे कि सोवियतों के पास कोई टैंक ही नहीं था कभी।

अब उन्होंने एक मामला दर्ज किया है
जार निकोलस की मृत्यु पर।
वे केस खोल सकते हैं
कि बुलेटिन का उपयोग कब हुआ
किसी और-और जगह पर, जानते हो तुम।
एक "स्टेशन अधिकारी बाविल्ले विनाश मचा सकता है"
प्रत्येक प्रशंसा पत्र जो बरबोनो के द्वारा हस्ताक्षरित है
प्रतयेक मृत्युआदेश जो दिया गया जन सुरक्षा समिति द्वारा
जो कि प्रदर्शित था। दरबार में चिल्लाने वालों के साथ
"रॉब्स पियरे फलां-फलां के लड़के जैकोबिन क्लब के सदस्य
शायद अपने आप को पूछताछ के लिए उपस्थित करे।"

मैं नहीं जानता यह कैसे कहना है, पाब्लो,
लेकिन चीजें थीड़ी सी भ्रमित कर रही हैं।
जैसे अभी तुम नहीं हो आस-पास
हो चुके हो अभिभूत तुम।

पत्र-2

तुम कैसे हो
कभी हिंदुस्तान को छुआ नहीं, पाब्लो,
अपने ज्वार भाटा की प्रतिध्वनि के साथ?
यदि तुमने रखा, तो क्या, या नमक की नदी
अभी भी तुम्हारे शब्दों की ज्वलंत छाप लिए होगी?
तुमने एण्डीज की रीढ़ के बारे में लिखा
और पतले रेककथा चिली के बारे में,
जो विस्फोट और सूर्यास्त के बीच खो गया।
यह झाग, रेत और मोम जो लेटे हुए हैं
आज्ञारात पटरियों पर, ज्वालामुखी की
छाया के नीचे, और क्या जली हुई राख।

तुमने लिखा पेटागोनिया के बारे में,
उसे समझा
और तुमने मैक्सिको के ऊपर पन्ने भरे,
यह रक्तिम-भू उसकी परतदार वर्षा
और उसके भव्य 'कोर दिल्यरास'
और उसका "मुख, ज्यों छोड़ी गई खानों से है
इसमें आग के सर्प धूल के व्यक्ति" जिसे
कोई समझता भी है।
तुमने कैक्टसों के बीच एक मैत्री : पाई
और तुम्हारी अपनी जड़ जिसके साथ
नहीं लड़ सकता कोई।

तुमने यहाँ तक कि लिखा रंगून पर,
और इसकी तुलना श्वेत खाड़ियों के देवताओं
सफेद व्हेलों से की और फिर तुम बदल गए
एक पार्थानाम के भिखारी सा, जो भगवान की
प्रतीक्षा करता रहा,
जो किसी और कार्यालय में न्यस्त था।
यहाँ भी यह सब समान है भगवान और नौकरशाह
सभाओं में व्यस्त हैं जब उन्हें उनकी जरूरत है।

मुद्दा यह है लेकिन जब तुम रंगून के बारे में,
लिख सकते हो, हमारे बारे में भी लिख सकते हो।
हमारे देश की मिट्टी भी अपने आप को
महसूस करती है
कमल की पंखुड़ियों से हरी और छितरी हुई लीलैक
कृष्णमृदा पर हमारा पाताल लोक भी छाया के साथ
मोटा है।
हम अपने लघु पादों, मुर्गी के बीट के संस्करण भी
रखते हैं और सुअर का मल एवं अन्य
जिससे तुम घृणा करते हो।

तुमने सिनेटर को लिखा
जिसने शर्करा के बारे में बात की
और वो सिनेटर जो सेम के बारे में बोला।
केवल भूख और कंगाली की बात करने पर
यह आता है सिनेटर अनुपस्थित थे,
यह विषय संभवतः साहित्यशास्त्र के लिए उत्तम है।
लेकिन दार्शनिक चर्चाओं के अनुकूल नहीं है
तुमने लिखा देश के बारे में
जिसका नाम पसीना और खतरा, भूख ठंड एवं दुदर्शा।
तुम मेरे देश के बारे में सहज ही लिख सकते थे
श्वेद एवं क्षुधा, ऊष्मा एवं दुर्दशा
यह बदलाव किसी तरह की चालबाजी नहीं चाहता।

नशे की हालत में, तुमने दीवारों की थूक की बात की।
यहाँ बहुत कुछ देखा है तुमने,
वेश्या के मोजे की बात की तुमने,
तुम्हारे लिए समाचार है मेरे पास
हमारी वेश्याएँ मोजे नहीं पहनतीं।
इसी वहज से प्रतीक्षा नहीं करनी थी तुम्हें
वह वे हैं जिन्होंने प्रतीक्षा के अधर खुले कपाटों से
जैसा तुमने छोड़ा था
और तुमने नेहरु से मौज ली।

उसने ऐसी खुराक दी गुटनिरपेक्षता, समाजवाद और
अहिंसा पर
वो जो जानता है तुम ठहरे
और संभवतः
जे.एन.यू. में आमंत्रित व्याख्याता पद स्वीकार किया तुमने।

तुमने एकांतवास से नफरत की,
आशा है मुझे, सही मिला तुम्हें।
यदि तुम भूल गए
मैं तुम्हें उद्घृत कर सकता हूँ तुम्हीं पर;
"एकांतवास दुनिया की निरर्थक गर्द है
चक्र बिना धरा के घूम रहा है या जल
या मानव"

अच्छा, तुमने नहीं रखा एकांतवास यहाँ।
तुम्हें घेर लिया था पचास करोड़ लोगों ने
पैरों से ठुड्डी तक,
दिल्ली जो कि धेल्ला रह चुकी है
संयुक्त राज्य अमरीका का इतरवास फूलकर कुप्पा
हो गया था स्वागत पर।
एक फीता जिसने अपनी प्रार्थना में शिकायत की;
तुमने यह हस्ताक्षर नहीं किया,
कभी महसूस नहीं हुआ तुम्हें।
एक तीसरी दुनिया का हस्ताक्षर महत्वपूर्ण हो सकता है।

तुमने लंबी रातों की बात की
उस समुद्र की बात की, अँधेरी लहरों की बात की
अंत तक की बात की अंतरिक्ष के।
तुमने अवश्य ही इसे संक्षेप में रखा।

"वह विस्तार जिसे अलडेबरन देखता है"
क्या भयानक पंक्ति है पाब्लो, (संज्ञान में लो
कैसे दुःखी होकर लिखता हूँ मैं और कितना खूबसूरत...)।

तुम्हारा उत्साह देखते हुए
रात के लिए उत्साह देख
तुमने हमारी रात्रि एक्सप्रेस से प्रेम किया,
एक बड़े पहिए वाला घूमकर, अँधेरे में चलने वाला;
अज्ञात जैसे धोया जले हुए चतुर्भुज से
ट्रेन खिड़की से बाहर जाती हुई,
बाहर भागती हुई रात में पथ पर
और धीरे चलती हुई ध्वनि;
तुम्हारी खोखली आत्मा में प्रविष्ट हुई
शाप में लिपटी इंजन के भोंपू ने उद्घोषणा की,
कि यदि धरती के तख्ते से और खोए हुए अवास्तविक अंतरिक्ष से,
बचपने के स्वप्न का मौका आया।

द पोसिदोनियन्स

हर गर्मी के बाद
वे जलाने लगी यादें
जो कुछ वे भूल चुके थे
उन क्षणों की, जो अबूझे थे
जब भुला दी थी उन्होंने
अपनी क्षति।

द पोसिदोनियन्स
(कवाफी के बाद)

(हम व्यवहार करते हैं) उन ताइरेनियन्स खाड़ी में बसे उन पोसिदोनियन्स की तरह जो यूनान से होने के बावजूद भी जंगली बना दिए गए थे। ताइरेनियन्स या यूनानियों की तरह, और जिन्हें अपनी संस्कृति और अपने पूर्वजों की भाषा और संस्कृति को बदलना पड़ा था लेकिन वे लोग एक यूनानी पर्व आज भी मनाते हैं, अभी तक वे लोग एक जगह इकट्ठा होते हैं और याद करते हैं अपने प्राचीन नामों और रिवाजों को और उसके बाद जोर-जोर से पश्चाताप करते हैं और रोते हैं और फिर एक दूसरे की ओर देखकर लौट जाते हैं।

(एथेनियन्स, दीप्नोसोफिस्ताई, पुस्तक-14, 31ए, 632)

एक भाषा को विफल करने को
एक सूर्य चाहिए।
यह जल नहीं सकती,
ना ही जम सकती है।
उस तरह से जिसे खत्म नहीं किया जा सकता
जैसे जंगल पहाड़ियों के नीचे छितरा जाते है।
या समुद्र किनारे पर आकर खत्म हो जाते हैं जैसे
ये औरतें हैं भय से सहमी हुई
उन्हें विश्वास में लेते हैं सैनिक
वे जब नाव पर चढ़ते हैं
फिर ब्याह रचाते हैं।

वे विश्वसनीय होती हैं,
खाना पकाने में,
चपाती सेकने में और
दारु बनाने में
इसके अलावा फँसी हुई मछलियों के झुण्ड को
जाल से निकालने में भी होती हैं अभ्यस्त।
उन्हें देवियाँ मिल जाती हैं लेकिन
कभी-कभी गलत भी।
(लेकिन उससे क्या?)

माँ को समझ लेते हैं बेटी।
और वहाँ होती हैं छोटी-छोटी गलतियाँ
विधि और यज्ञ में,
तैलीय शुद्धीकरण और तर्पण में।

कुछ मौसम आदमी को करते हैं अभ्यस्त
कि उनकी स्त्रियों के सकुन वाली चिड़िया;
हमेशा सही होती हैं
खून की धार की तरह उतरता है नीचे
उन स्त्रियों का डर
और एक नयी भाषा की परवरिश होती है नाल से।

क्या करता है एक इंसान विचार के साथ
जो एक लेखन पर शुरू होकर
दूसरे पर होता है खत्म?
बीत जाती है एक शताब्दि या शायद दो,
तायरेनियन्स और एटरूस्केन्स के साथ रहते-रहते,
और उन्हें चलता है पता तब;
कि एक भाषा में केवल शब्द ही नहीं;
उससे भी ज़दा कुछ होता है
जिससे हर काम शराब बनने से
प्यार करने तक
एक अलग तरह की आवाज के त्रिकोण,
से छनता है।

और वो भूल चुके हैं उस ज़मीन को
जहाँ से रवाना हुए थे,
और उन अक्षरों के समुदाय को
जो बोया गया उनकी ही ज़मीन पर,
क्या करते हैं वे लोग
दिल से यूनानी होकर नाच और खेल,
वीणा और खेल साथ
वर्ष में एक बार,

खून में भीगी हुई अपनी यादों को ढूंढने के सिवाय
यह डिमीटर की तरह,
हाथ में टॉर्च लेकर
पाताल में गुम हुई अपनी,
बेटी के सिवाय?
और थोड़ा रो लेते हैं
उन यूनानियों के लिए जिसे
वे खो चुके हैं
और याद करते हैं वर्षों के अंतराल के बाद
ताइरेनियन खाड़ी से,
ज़दा गहरा हो चुका होता है।

न चाहो

न चाहो संगीत की धुन
पत्थरों से टकराती उमड़ रही है लहर
ज्यों इबादतगाह की प्रतिध्वनि के साथ
बह रहा किलीसा।

न चाहो अतीत की स्मृति
तटीय तरंगों से।

न चाहो हीरे की बर्कदम छाया
दागदार कांच के मारफत नूर है दानेदार
न ही शिकस्त जुबां से
निश्छल शब्द की आस करो।

न चाहो दैव अनुकंपा
पर्दानशी रात में गंधक से बना
माचिस का शहतिरा धधक रहा है।

न चाहो ऊँची घास हिस्सा हो
यदि हवा इससे होकर गुज़रे
गोया एक चीता अपना स्या रंग
और सुनहाली धारी छोड़ताहै फ़जा में।

अपने सिरे को झुकाओ और गहराई तक
पाँच से पाँच फीट, पाँच से छः फीट
ज़मीन से तह तक, ज़मीन से धुंध तक।

यह एक मकबूल कवि की
सही उम्र नहीं है।

दो प्रतिमाओं का पयाम

एक बार
नारेबाजी करते सड़क पर
वे विक्टोरिया को 'पुलिस लाइन'।

छोड़ आए
उसके चेहरे पर लज्जा नहीं थी,
गोयावह नीम के नीचे खड़ी हो,
ताँबे के लबादे में मो-मिन
साम्राज्य और स्थूल काय पच्चड़ थे,
परिंदों की रौशनी सी उसकी तायरा बनी थी।

गोया उसके पैरों तले फूल पड़े थे,
वह सोचने लगी कि वह देवी है।

पहली निगाह में क्रांतिकारी दौड़े
आनंदित व चिल्लाते हुए
"फेंक दिया !" "फेंक दिया !"
खंभे के नीचे गांधी।

अखण्ड इसफाहन पर

यह शासन के बाद था, जब बहुरंगी फूल में
हुसैन के खून का रंग ग्रहण कर लिया,
वो अखण्ड अब्दुल्ला भेदी
इसफाहन के पास आया।
"अगर वो यहाँ देर तक रूका
ये हमारे साथ बुरा होगा" शहर के बाशिंदों ने कहा
उसकी श्रद्धा के लिए गंभीर थे
और उसकी नीरसता एक अनिष्टता थी।

राहें अनावरत खड़ी थीं उसके पहले,
एक को जहाँ आप नहीं देख सकते
एक आँख की सफेद परत दिन के उजाले में।
उसने 'फालगीर' देखा
हाफिज की किताब खोली, उपदेश के लिए
लेकिन पावन पुस्तक नहीं;
और तासगीर उसके पानी के बर्तन पर झुका
नकली भविष्यवाणी के लिए, लेकिन वो कभी नहीं
उसे काबा की ओर झुका हुआ देखा।

एक बार दीप जले थे
मदिरा बहती रही सीजर के रक्त की तरह।
पासा पलट गए फुटपाथ पर
जय ध्वनी और अश्लीलता को;
वेश्या ने लहंगा सरकाया उसके आगे निर्लज हुई।
सिर्फ चेहरा अनावरत न ही, संत्रास
स्कंधास्थि तक भी चमकते रहे।

और ये सिर्फ बहुत नहीं था,
ये घृणित व्याभिचारी कर्म
सड़कों पर नजर आ गए,

अर्द्ध वक्षस्थल और अलप गर्भित।
अखोण्ड ने अपने अनुयायियों से कहा
"चलो यहाँ से पालायित हो जाएँ
भगवान के बिजली गिराने
और आग में फँसने से पहले
वे शाम तक उड़ चले, जैसे पहला ध्यान खत्म हुआ।"

लेकिन जब भोर में पड़ाव डाला उन्होंने।
एक चेले ने कहा : 'वे इसफाहनी, मौलवी और
सेना दोनों को खुश रखते हैं',
जहान के रकाब में एक पैर के साथ
और एक भविष्य के रकाब में;
उसकी कल्पना इसफाहन को घूम गई
और हजारों नमाज वाली चटाई देखी,
शहर में रहनेवालों द्वारा छाई गई
वे खुदा का शुक्रिया अदा कर रहे थे
उन्हें अखोण्ड से मुक्त करने के लिए।

रात के तरीके अलग-अलग हैं
सुबह के तरीके से, उसने कहा।
सितारों के नीचे, आप पलायित होते हैं
दुष्टात्मा से, और अल्लाह के कोपभाजन से।
सुबह में वो आपसे कहता है,
वह पीकदान जिसमें गुनाह खंगाले गए
वे एक साथ मंद हो गए, प्रार्थना का बुलावा
और सुबह के रंग।
'पड़ाव उठाओ' कहकर चिल्लाया
"हम लोग इसफाहन के पास वापस जाएँगे।"

शतरंज

पैदल प्यादे चारा कानून हैं,
अग्रनियों का पुनरुत्थान हुआ पीछे से;
बुढ़ापे और बीमारियों से आक्रांत,
निहत्थे, उनके त्रिभुजाकार झण्डों का झुककर लहराना।

बगैर रात गुजरे घोड़ा दीवार के पार कूदा है,
दुश्मन राजा के किले में धमाचौकड़ी मचाने,
घोड़ा (नर) राजसी हरम में, जहाँ सुंदरियाँ,
करती हैं सहवास:, एक लचीला नाच, भोड़ा गान।

और एक भगदड़ का कारण बना है, जैसे ही उसने अपना रास्ता चुना है
श्वेत श्याम के प्रशस्त मार्ग बिसात के भूल भुलैए के पार
स्वास्तिक का टुटा टोटा। वो हिनहिनाया जब वो
काली टोप में विश्प के सीकचे में आया

जो कसरत के झूले के कर्ण के साथ और तब
काले प्यादों के झुण्ड के पीछे हटता है।
जहाँ कहीं भी वो घाटियों के अभिमुख खड़ा हुआ
वो द्विभाजित किए तख्त को उसकी द्विभुजाओं के साथ।

हाथी का बल उसके रास्ते का चार चक्र ऊर्जस्वित की तरह,
इस बिसाती के पत्थरों पर बँधी पट्टी को काटा,
अपने दुश्मनों को अँधाधुंध मारता रहा जब तक विनिमय न हुआ,
एक उन्मत्त घोड़े के लिए, वह गिर पड़ा बिना कराह के।

एक जगह पर बैठा हुआ जहाँ आठ रास्ते एक–दूसरे को प्रतिछेदित किए
इंतजार करता है बाघ रानी का असिरियान, का काले किस्मत
जैसे धमनी से कँपित,
वो गुस्से में है। रानियों ने जब शादी की नपुंसक राजाओं से

उसकी आठ तलवारी भुजा रौशनी के साथ चरचराई।

ईंटों के आवेशित गढ़ तक उन्होंने अपना साथ पकड़ा
थोड़ा सुरंग के समान, एक मुश्किल भरे मुख्य मार्ग से।
वहाँ कुछ नहीं है कि वह कुछ कर सके।

लेकिन शिकार क्रोध और वापस गए, समय पर
एक-दूसरे को निर्दिष्ट किए डायन रानी
चली सफेद रानी समान किस्मत का शिकार करने,
वे उनके कटोरे के अंतिम खून की बूँद के गिरने तक।

और पास आए अपनी नफरत के चुंबकीय क्षेत्र के साथ,
विज्ञप्ति के साथ शिकंजे में प्रतियमान राजा लड़खड़ाया
एक समय एक चतुर्भुज, मूर्खता का रंग-ढंग
यह तब, जब हाथियों और विशप्स का वध हुआ।
और सहवती 'रानी की अन्त्येष्टि से वापस आए

कि वह खुद अपने खुद में आया और घोड़े व प्यादे के साथ।
दूसरे राजा का पीछा किया
वीर कथा की गर्द अब बिसात साफ किए।
हेक्टर, डैरियस का पीछा करता अखिलीश
मैक डोनियन से शोंका गया मरने तक।

संस्कृत कवि का चारण

मित्र से;
उसका मित्र पूछता है
वह जंगल के रास्ते से आया है
या बैलगाड़ी के रास्ते सड़क के साथ?
वह झरोखे से कूदेगा या
चोरी से दरवाजे में?
वह हंसी, 'मूर्ख'
प्रेमी खुले प्रकाश के साथ आते हैं।

ईर्ष्यालु पति के सामीप्य
तुम कौन, ठीक एक प्राचीर की दूरी से जीते हो,
उसकी हिफाजत करना जब मैं कूच करूँ।
बाहर की आवाज को सुनना
किवाड़ खुली न हो
दरीचा बंद रहनी चाहिए।
नजर रखो, घण्टी के लिए नहीं
घूम रही कमरबंद की दन्न... की आवाज।

संजीदगी में
मैं उन्हें पुनः नहीं सुन सकूँगा
दो वृत्ताकार इबादतगाह की घण्टियों को
उनके टार्सो पर।
वे अपने पैरों में मेंहदी और छातियों पर
संदल का लेप लगा रही हैं।
चमका रही हैं घण्टी
बजाने को अपने सच्चे परमेश्वर के लिए।

जैसलमेर की भविष्यवाणियाँ

धुँधलके के दरम्यान पीला पत्थर उद्दीप्त होगा
एक नई ज़िंदगी की आभा के साथ।
एक अंदरूनी रौशनी अगर ये प्रतिबिंबित अथवा व्यक्त करे
अलग-अलग अभिशापों के नीचे रहने वाले लोग
इसकी बराबरी करेंगे, एक पिया हुआ खच्चर वान्
या एक विश्वसनीयगणहीन, एक पीर का बेटा शक्तिहीन,
भटका अपनी धानी से, एक आवारा
ऊँटों का एक झुण्ड लव्णलेह या पोखर तलाश रहा है
और जब वे झाड़ी और पत्थरों पर मेहनत करेंगे
तब जैसलमेर तृणमयी पत्थर का अंतःदहन होगा
दिन में गंधक की उभार, जबकि
चांद के तले पुखराज सा चमकेगा।

विश्नोई रक्षण करेगा काले घोड़े का
जहाँ ये खड़ा है और लुटेरों से मोर को बचाएगा।
जैन मंदिर में पुजारी वर्णन करेंगे
एक कहानी का जो उनके पास है हजारों बरस कहने को;
कैसे गोरी की मूर्ति तोड़नेवाला गिरोह काटा होगा
मूर्तियों को और उनकी तलवारों को कुंद कर दिया
कैसे जब निरंकुश शासक घोर वापस गया
भगवान वैसे प्रदर्शित थे जैसे पहले थे,
मंदिर में चित्रवल्लरियों का पलस्तर एक बार फिर
उनकी नाक को काटा, कोहनी और कंधा विकृत किया।
वह संरक्षकों की बात करेगा, नागराज और उसकी पत्नी
एक अनबन के तहत मंदिर की छत को सरके।
71वें में वे नीचे नहीं आए
युद्ध खत्म होने तक, और इस तरह शहर की रक्षा की।
जैसे समय गुजरता है, आपको कहने की जरूरत नहीं
स्वर्णशहर, नहीं खरंजा डाला जाएगा स्वर्ण के साथ।
नटखट लड़के दौडेंगे यहाँ, और बकरी के बच्चे मिमियाएँगे

और पैबंद लगे मार्ग के समानांतर ऊँटों की गद्दीदार तह
एक हवेली का अग्रभाग, वह क्लिष्ट परेशान चेहरा
नक्काशीदार लकड़ी की तरह दिखेगा, सोने-चाँदी के जरदोजी की तरह।
मृगमरीचिका भीड़ लाएँगी यहाँ तक, जादुई आकाश गमित उड़ान
रेगिस्तान की आँखों का श्वेत समाप्त

जब सितारे एक-दूसरे के लिए गाएँगे और उल्काएँ प्रदीप्त होंगी।
ये असाधारण प्रेमी जो होंगे एक-दूजे में संलयित।
शहर एक प्रसंग रचेगा रेगिस्तान के लिए,
और रेगिस्तान एक संदर्भ लिए जैसलमेर।

रेगिस्तान के दोनों बाजू के बुर्ज उड़नतस्तरी हो जाएँगे
सी.सु. ब और वन संरक्षक के हाथों दूरबीनै,
घुसपैठियों की धुँधली छाया के लिए, जब वे सब देखेंगे
रेत के झोंके आगमन, शायद कोई अलग है।

अनिद्रा

झींगुर ने अपनी परवाज से
रात की खामोशी भंग की।
एक गुजरती कार
झरोखे पर नरममिजाज छाया छाड़ गई
नुमायाँ यकीनी शब्ह झिलमिलाई।
मिलन के वक्त सोजिशें घबराईं; अधखिली,
और गाहे-ब-गाहे प्रेम की कशिश सुनाई दी।

अमरीकन काव्य -कार्यशाला

नारियल से सनी जुल्फें उछालती हुई
उसने जिक्र किया, कविता पढ़ने के बाद;
"महोदय, मुझे क्षमा करें
मुमकिन है यह कविता गोपियों के
प्रणयिता के लिए नहीं है।
मैं सीता हूँ ।और
राम के प्रेम को महसूस करती हूँ।"

हिंदुस्तानी प्रवक्ता गोया
कानाफूसी में व्यस्त, अन्य
दर्शक के बगल में खड़ा बोला;
"चिंता फिजूल है'
वे दोनों विष्णु के रूपधारी हैं।"

सिगार का कश खींचते हुए,
अमरीकन ने दखल दी सिर झुकाए,
"मैं पार्टी को बेरूखा नहीं करना चाहता।'
राम के साथ अच्छा समय गुजारो।"

मध्य काल

साल की शाखों से, गिरे हुए पत्तों का लौटना
मानो आँखों के प्रकाश का कम होकर लौटना
भागलपुर के अँधकार में,
आँखों के बीच छिद्र का होना;
कोई किसी की छाती पर पैर फैलाकर खड़ा,
बांया अँगूठा आँख को निकालता हुआ, दायाँ हाथ,
में साइकिल की तीलियाँ लिए हुए,
मैंने पूछाः कब तक यह भ्रांति इन वीभत्स
दृश्यों में व्यस्त रहेगी?
तभी हत्यारे की खबर आई दरवाजे पर
माँ और बच्चे डर कर सिमट गए
उस छोटे से गाँव में कफन कम पड़ गए
कई हेलीकॉप्टर गिद्धों से पहले नीचे उतरे,
पत्रिकाएँ मृत्यु संवाद से भरी थीं
एक घण्टे का वास्तव में क्रूरता से भरा होना
पूरे जीवन के अनजाने दुःखों के बराबर है
कैसा था यह गांव में हरिजनों की कहानियों
को सुनना
मेरे हाथ धूल से भरे दराजों में सूक्ष्म
अन्वेषण करने लगे
मध्य युग के किसी काले कारनामे पर
लिखी गई किताब के लिए?

न तो दीवारों पर टंगी हुई कोई प्रतीक मेरी
आँखों को आकर्षित कर रहा था,
और न धर्म योद्धा का नदी पार करना,
बल्कि एक अभागा, जिसे दानवों के शहर
के द्वारा खरीदा गया था
उसे काटते हुए देखने का जनसुख के लिए।
धर्म शुल्क और कर लोगों को पागल कर रहे थे
जैसे कि रक्त का बहाव रोकने का यंत्र कस दिया हो।

यादें एक दृश्य पर कस जाती हैं ,जब पेरिस
के अग्रदूत एक कर की सूचना देते हैं
और अपनी जान बचाकर भागते हैं।
और हैजा या अधिपति के बदले की भाँति
अपना प्रकोप उन व्यक्तियों के ऊपर दिखाया,
जैसे ये गुंबद दार प्रतिकारी हमारे ऊपर आ कर बैठ गए होंगे।
वो अपने पागलपन में कभी नहीं जानते
कि यह ईश्वर का श्राप है या फिर,
किसी चूहे या किसी संक्रमित जीव के द्वारा फैलाया गया रोग।
धूम्रपान घर में, बीमारी से मुक्त के
लिए धूम्रपान जलाया जाता है।
मूँगे का चूर्ण पिसी हुई मोती लौहबान और
केसर इस्तेमाल करने क्या निर्देश दिया जाता है।
और फिर भी अगले ही दिन कखौरी कांखों
और अरूसंधियों भर जाते हैं
चिकित्सक महत्वपूर्ण थे
वे बैंगनी चींगे और चाँदी के धागों की कमरपेटी पहनते थे
ये हमारे रक्षकों के मध्ययुगीन वर्णन थे
जो युद्ध से बचाते थे और रोटियों
की कीमत कम किया करते थे
और इस तरह में
मध्य युगों का सार ले रहा हूँ
जैसे-जैसे हमारा खास होता जा रहा है
और जैसे कोई भविष्य, तेजाब की बूँदों के
तले गिरा हुआ, हमसे कोई सांत्वना पाएगा।

पुनर्दर्शन

वही खसखास, वही तिरपाल, वही मेंह
पानी में कलियाई फसल है मुरझाई
गट्ठर सी पुआल में।
एक पीले फूल का पौधा
बूंद की तरह गिरता है पीले झूमर सा।

शीशम अमराइयाँ, पलाश के फूल
जा बजा पड़े हैं सड़क पर।
वे कैसे हरे हो सकते हैं?
लाजिमी है, खदज़ख़्म ही ताजगी का मंसब है
इस जहान में, जहाँ सभी को जीर्ण होना है।
साहिदे रोज के तले प्यार भी हरीमिता खो रहा है।
सभी चीजें साथ-साथ मुरझानी है,
गोया बबूल सांय-सांय किए,
मछली की मानिंद हुँकारता है
सोजिशे बर्ग से कंटीला होना चाहता है।

झींगुर तलैया के दलदल में सराबोर
कांपता है पै दर पै हूँ हूँ की नार किए,
पायान को आतुर है
खरबूजे के ढेर हैं गुजरगाह पर
ताड़ी के इस उपवन में ट्रक का इंतज़ाम् किए।
एक मरी भैंस अरसे से खाल उतारने की क्रिया में
फ़क्त बर्खास्तगी को प्रतीक्षित है कालचक्र में खड़्-खड़् किए।
इबादतखाने में भारी गदा लिए हनुमान खड़े हैं
एक जिल्फ सी इबादतगाह जहाँ से
भगवान उड़े थे
नीलकंठ पक्षी तार पर बैठा है।

ज़िला अदालत

एक टकराती हुई कार से;
संदूकची बाहर फेंकी गई
एक आरी काटती हुई छूटी
एक बंदूक की नली, एक प्रक्षेप्यास्त्र;
एक मुँहबंद लिफाफा, शिला खण्ड से बड़ा
दर्शाता है सभी कुछ
एक कब्र पर।

एक मेज दो दराजों के बीच
बहता है जिसमें मकड़ी का जाल
जहाज की मानिंद।
रौशनदान गर्द की धुँध से ढका है
संयम और गर्द 'अ' और 'ब'
दर्शाता है यहाँ।

खाज़ अँधे बरामदे को ढके है
जहाँ वकीलों की आवाज़
नामों का छींटा अब्र में तह में फेंकती है।

एक छिपकली
बंदूक की नली में झुकी ढूँढ़ती है,
तब तक, बंदूक नहीं चलती
जब तक छत का पँखा चरचराता है।
अपने बलुट के चारों तरफ।
काले कोटधारी पेशेवर वकील
और काली पतलून पहने मुंसिफ
कानून की देह को दूर से चबा रहे हैं।

उपसागर से लौटते हुए

अरबी लिपि की भाँति
उसने भी घसीट रखा था पश्चिमोन्मुखी;
दाएँ से बाएँ की ओर
छोड़ रखा था अपना मिर्च का पेड़
और अपना कटहल मंगलोर में
जब वो लड़की जिस पर आसक्त था वह
भद्दे दाँत वाले मकैनिक के साथ भाग गई।
जो अबू धाबी से वापस आया था
एक थ्री इन वन लिए; एक ट्रांजिस्टर
और एक चार इंच का टी.वी. स्क्रीन
सब कुछ जो दो फुट के पालिसदार
संदूक में समाया था
वह वापस चला गया वधू को छोड़कर
जिस किसी सर्विस स्टेशन में वह था।

उसके प्रतिद्वन्द्वी की टैक्सी के पट्टियों से
धूप उड़ी, और बड़ी मुश्किल से बैठी
जब उसने अपने आप को व्यवस्थित किया।
"यह वह है जिससे तुम संबंधित हो
उसकी माता ने प्रतिकार किया
हर कहीं घर नहीं हो सकता
हम तुम्हें एक सुंदर दुल्हन दिलवा देंगे
जिसके बालों में भली-भाँति तेल लगा हो
और कटहल के जेसे स्तन हों।"'

लेकिन वह कोचीन चला गया,
और आधी ज़िंदगी की कमाई लेकर ठेकेदार को दे दी
और खाड़ी चला गया।
और अबू दाबी पर न ही अपनी ज़िंदगी पर।
यदि वह दुबारा भागकर आ जाए ? उसकी तरफ
जबकि एयर इंडियर की परिचारिका ,जो हिंदी ब्रिटिश उच्चारण के साथ

और अंग्रेजी पंजाबी उच्चारण के साथ बोलती है
उसे लैंब करी और भात परोसा
उसने अपना दिमाग घूमने दिया विचारों में,
मैकेनिक के होंठ चूसते हुए अवश्य वो
चुंबन सेनामुख के दाँतों के पार पहुँची होगी

कुवैत से उतरने पर उसने महसूस किया
चमड़े के समान हवाओं को अपने चेहरे पर
और पैरों के नीचे रेत जैसे
घायल सांड छुपा हो।
उसने उन गुंबदों पर आश्चर्य किया
कॉलम के बीच में कलमबंदी कर रहे थे
जब तक उसे बताया नहीं गया
वे जल के स्तंभ थे।
इस्लामी स्थापत्य कला वहाँ प्रचलित थी।

वह लिपि के समान दूर पश्चिम में गया
हिंदी मिसकिन एक अच्छी नौकरी ढूंढ़ता रहा
नाम जो जबान मोड़ दे
जो अलंकृत थे रसआकुला, हफ-अल-मस्तीन
और पहला साल चला गया। पहले गरम
फिर वातानुकूलित, और उसके
घर के आए हुए पत्र जिसमें उसे हिदायत दी गई
कि वह सोने में निवेश न करे।
उसकी माँ ने उसे लिखा,
दो लड़कियाँ देखी हैं, एक लंबी और सांवली
दूसरी गोरी,
और तुमने अनुमान लगाया तोला मन में
दो तस्वीरों के ऊपर एक सुबह असीरिमाई बाघ
उसके द्वार पर खड़ा है पूँछ हिलाता
एक प्राणी जो दूर तक देख सकता है,
उसने तेल के खेत ढके हुए थे
जो काफी दूर थे उससे

जो सिएरा मादरे से भी लंबी है
और चिली की रटरेखा से भी
एक सौ मील लंबी गोली एक हजार मील।

लंबे नाल में विस्थापितों की पगडंडियाँ
लंबी और प्यासी हैं।
जब तक वे भूमि पर चलती हैं
और मिलाने वाली सीमाओं पर
जो बूँद-बूँद बहती है रेत की शिराओं में
वह सूरज के नीचे भुन गया था
जब तक उसकी त्वचा पीली हुई
वह जॉरडन के सैनिकों द्वारा पीटा गया
कैंप में अनुशासन लाने के लिए उसने किनारा
कर लिया, सूखी घास में घूमने के बजाए
एअरबस में सहारा एअरपोर्ट पर
उतरते हुए अपन माँ की बाँहों में एयरपोर्ट पर चला।
शहर के दृश्य और ध्वनियाँ के साथ,
लेकिन हॉर्न तब भी बजते रहे
गलियों में कबाड़ धातु की तरह,
जिन्हें सेप में लाने के लिए हथौड़े, बजाए जा रहे थे
फुटपाथ पर बिना भोजन ढूंढ़े स्वान,
और इधर-उधर खाली जगह ढूँढ़ते
सड़क के किनारे ठीक माहिम के सामने
उत्तर देते हुए जैसा कि हमने इसे देखा
है – 'प्रकृति की पुकार में'
वह जानता था कि आखिरी में
वह शब्दहीन घर में है।

अध्याय तीन

अनूदित हिंदी कविताओं में विनियोजित विषिष्ट संदर्भों पर टिप्पणी

(क) स्थानीय शब्द और ऐतिहासिक प्रसंग

[1]*बोर्ख़ेस (1899-1986)* : ये एक महान लेखक थे, इनका जन्म यूनस एरस में हुआ था। सन् 1941 से इन्होंने काफी लघु कथाएँ लिखी। इनमें 'फ़ेसियंस' (ficciones, 1945) नाटक और एल एलएफ (Eleph, 1949) ये मुख्य हैं। सन् 1980 में इन्होंने सर्वेंट्स पुरस्कार जीता।

[2]*ब्रूटस (C.85 to 45 BC)* : ये एक समूह के नेता थे, जिसका संबंध जूलियस सीजर से था। सीजर को लेकर इस विवादित मुद्दे पर कैशियस और इनका आमना सामना 44 BC में हुआ। इंटोनी और ओक्टोवियन द्वारा ये फिलीपी में पराजित हुए। अंततः इन्होंने अपने-आपको मार डाला।

[3]*गाउको* : ये एक खानाबदोश जाति है, जो अपने आप में स्वतंत्र रहना पसंद करती है तथा यह जाति अर्जेंटीना के पामा से संबंध रखती है। इनकी प्रथम उपस्थिति 17C में हुई। इनकी गिनती अर्जेंटीना और उरूगुवे के गंवारू जनसंख्या में होती है।

[4]*अबू धाबी* : यह यू.ए.ई की राजधानी है।

[5]*एक्रोपोलिस* : प्राचीन एथेंस में जो राष्ट्रीय कोश रखता था और बहुत सारे पवित्र स्थान थे यहां, जहां पर एथेंस के लोग पूजा करते थे।

[6]*अखेंटटोन* : ग्रीस के 18सें डायनस्टीवां राजा थे। उसने पुराने देवताओं को पुनःस्थापित किया। उसकी एक पत्नी का नाम नेफर्रावति था।

[7]*अलाबास्टर* : जिप्सन जो कि आभूषणों को पॉलिश करने के काम आता है।

[8]*एंडस* : साऊथ अमरीका की यह महत्वपूर्ण पर्वत श्रृंखला है जो पेसिफ़िक समुद्री किनारे के समानांतर तियेरा डिलफ़ेगो से लेकर कैरेबियन तक लगभग फ़ैली हुई है। इसकी लंबाई लगभग 6,400 से 4000 किलोमीटर तक है। के अकांकागुआ जो अर्जेंटीना में स्थापित है की सबसे ऊँची चोंटी है।

[9]*असीरिया* : ऊपरी मेसोपोटामिया में एक छोटा सा स्थान है। आगे चलकर यहां से असूर के स्थानीय राजाओं ने 9वीं और 8वीं BC में राज्यों को जीता, जो कि इसका सर्वाधिक अच्छा काल था। 612 BC में इसका विध्वंस हो गया।

[10]*सीजर* : यह पैटीसियन ओरिजन का राजनेता था। शक्तिशाली सेना होने के कारण यह अपने राज्य को अटलांटिक समुद्र तक बढ़ा सका। लेकिन इसकी दूरदर्शी महत्वाकांक्षा के कारण पूरे परतांत्रिक व्यवस्था का रोम में ही विध्वंस हो गया। अपने राज्य के लिए उसने **60 BC** में पांपे एवं क्रासेस से संबंध स्थापित किया। 9 साल तक इसने अभियान जारी रखा। परिणामस्वरूप इसका प्रभाव रोम का प्रभाव पश्चिम में पुनः स्थापित हुआ। **55 BC** में इसने ब्रिटेन के ऊपर चढ़ाई की। **54 BC** के द्वितीय आक्रमण में उसने आर्थेसस को पार किया और द्वीप के एस.ई. को अधीनता स्वीकार करने को मजबूर किया। उसने अपनी सेना को अरूबिकन के पार इटली में युद्ध में सिविल वार में झोक दिया। पांयेइयन सेना शक्ति के ऊपर विजय करके उसे का रोम का वास्तविक नियंत्रणकर्ता बना दिया। 44BC में उसे डिटेक्टर फ़ॉर लाइफ़ से सम्मानित किया गया। उसका व्यक्तित्व पवित्र घोषित किया गया। उसकी मूर्ति मंदिरों में रखवाई थी। पुंटलिस महीने का नाम बदल कर उसके आदर में जूलियस रखा गया। ब्रूटस एवं केसस के नेतृत्व में गणतांत्रिक मनोवृत्ति के रोमनों के द्वारा इसकी हत्या की गयी।

[11]*कौसियस* : रोमानिया राष्ट्रपति, जन्म scrimicesti. रोमानिया कम्युनिस्ट पार्टी का महासचिव बना और उसके नेतृत्व में रोमानिया यू.एस.एस.आर का बहुत ही जल्द स्वतंत्र हुआ। 1974 में रिपब्लिकन के प्रथम राष्ट्रपति के तौर पर उसने धार्मिक

व्यक्तित्व स्थापित किया। 1989 में उसे पद से हटा दिया गया। जब उसकी सेना ने उसके दमनात्मक शासन के विरुद्ध किया। तत्पश्चात सैनिक न्यायाधिकरण में उसको और उसकी पत्नी एलीना को गोली मार दी गई।

[12]चिलीः चिली दक्षिण पश्चिम अमरीका का एक गणतंत्र राज्य है, जिसकी राज़धानी सेंटीयागो है। इसके चार टाइम्स जोन हैं, मुख्य धर्म रोमन कैथोलिक 77 प्रतिशत, प्रोटेस्टेंट 30 प्रतिशत, राजभाषा स्पैनिश, मुद्रा पेसो, समुद्री संकरे किनारे पर स्थापित इसके उत्तर पश्चिम में अडाकामा मरूभूमि है। यहां का वातावरण विभिन्नता से परिपूर्ण है। उत्तरी क्षेत्र उच्च नमी वाला क्षेत्र है। वायुयुक्त वातावरण सदूर दक्षिण में पाया जाता है। भूमध्यसागरीय यहां का वातावरण है।

[13]*कॉर्डिलस* : कॉरडेलर्स एक असीम विद्रोही संगठन है जिसकी स्थापना दांतोन एवं मरात के द्वारा 1790 पेरिस में हुई। इस संगठन को सोसाइटी आफ़ द मैन, सोसाइटी ऑफ़ फ्रेंड्स, सोसाइटी ऑफ़ द राइट्स ऑफ़ मैन, ऑफ़ सिरिकेन के नाम से भी जाना जाता है।

[14]*डेरियस* : परसीया का राजा, **(521 से 486 BC)**: यह धार्मिक सहिष्णुता, सैनिक विजय, और प्राशसनिक सुधार का इच्छुक नहीं था। उसकी पूर्वी विजय ने मुख्यतः उसके साम्राज्य को सुदृढ़ किया। लेकिन वह **490 BC** ममैराथन में पराजित हुआ।

[15]*इजिप्ट* : राजधानी काहिरा : टाइम्स जोन-2, जनसंख्या मुख्यतः इहामैटिक उत्पत्ति 90 प्रतिशत, रिलिजन मुख्यतः सुन्नी मुस्लिम, अल्पसंख्यक कॉप्टिक क्रिश्चियन, राजभाषा अरबी, मुद्रा गोल्ड और इजिप्टियन पाउंड, नील नदी, जोकि उत्तर में सूडान से बहती है। मुख्यतः बांध आसवान है। न्यू किंगडम पीरियड में 1567 से 1585 में इजिप्ट सर्वाधिक शक्ति शाली राज्य परसिया का एक राज्य हो गया। एलेग्जेंडर द्वितीय के द्वारा **4th BC** में विजित किया गया। पोटोलिमेक पाराओस ने **30BC** तक इजिप्ट में शासन किया। इसे अरबास ने 672 ए.डी. में जीत लिया। स्वेज

नहर का निर्माण 1869 में हुआ। सन् 1879 में यहां विद्रोह हुआ जिसको ब्रिटिश सरकार ने दमित कर दिया था। सन् 1914 में अंततः यह स्वतंत्र हुआ। 1952 में इजिप्ट गणतंत्र देश बन चुका था। 1953 में इस्राइल के साथ इजिप्ट का युद्ध छिड़ा। परिणामस्वरूप सिनाइलपेनिन सुला से इनको हाथ धोना पड़ा। यमकिरपुर के साथ इस्राइल के खिलाफ़ युद्ध किया बाद में 1978 में शांतिपूर्वक संधि वार्ता हुई। 1989 में इस्राइल ने विवादित टाबास्ट्रिब वापस दिया। 1991 में गल्फ़ युद्ध में संयुक्त राष्ट्र के साथ संयुक्त रूप से शामिल हुआ। 1992 में यहां इस्लामिक विचारधारा के समर्थकों का आंदोलन शुरु हुआ। आज के समय में यह संसार का एक पर्यटन स्थल है।

[16]*एजिप्सन* : यह अफ्रीकी एशियाई भाषा है। द्वितीय **CAD** के आसपास यहां कौपिक नामक भाषा का जन्म हुआ। यह मोनोफ़िस्थ क्रिश्चियन के द्वारा अर्पित है।

[17]फ़ैसलाबाद : इसका औपचारिक नाम लियालपुर है। यह 31 डिग्री 25 उत्तर, 73 डिग्री 09 पूर्व में स्थित है इसकी कुल आबादी 1600000 है। यह पंजाब का एक महत्वपूर्ण शहर है, जो कि अब पाकिस्तान का हिस्सा है। यह क्षेत्र कपास और गेंहू के लिए विख्यात है।

[18]*फ्रेंको* : इसका प्रचलित नाम एलकैडिल्लो है। यह स्पैनिश जनरल और सलाहकार थे। इनका समय 1937 से 1975 तक है। इनका जन्म एलफ़ैरोल नामक स्थान पर हुआ था। इन्होंने 1934 एस्टोरिस में दमित अल्पसंख्यकों के विद्रोह के नेतृत्व किया। 1935 तक ये चीफ़ ऑफ़ स्टाफ़ नियुक्त किए गए। 1936 में यह सरकार के विरुद्ध साजिश में शामिल थे। सन् 36 से लेकर 39 तक इन्होंने राष्ट्रवादियों की विजय होने तक नेतृत्व प्रदान किया। इन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध में तटस्थ होने के बजाय अहिंसात्मक रवैया अपनाया। इनकी गैर वामपंथी तथा उदारवादी दृष्टि ने पश्चिमी शक्ति से मधुर संबंध स्थापित करने में सहायता प्रदान की। 1969 में इन्होंने धोषणा की कि इनकी मृत्यु के बाद जुहान कारलोस नामक व्यक्ति (जो कि एस्पेन के अंतिम शासक का नातिन था) उत्तराधिकारी होगा।

[19] *गोआरा चे* : इसका प्रचलित नाम आरनेस्टो ग्वारा था। यह एक क्रांतिकारी नेता था। इनका जन्म रोसार्गियो अर्जेंटीना में हुआ था। इन्होंने क्यूबन क्रांतिकारी आंदोलन में अहम भूमिका अदा की। इसके पश्चात ये सरकारी पद पर आसन्न हुए। और कैस्ट्रो के अधीन थे। इन्होंने 1965 में क्यूबा छोड़ दिया ताकि ये दक्षिण अमेरिका में गोरिल्ला नेता बन सकें। अंततः ये बोलिबिया में पकड़े गए।

[20] *जेकोबियंस* : यह फ्रांस का अति क्रांतिकारी राजनीतिक संगठन है। फ्रांसीसी क्रांति में इस संगठन ने अहम भूमिका अदा की थी। इसका आधार जैकोबियन है। (फ़ादर ऑफ़ पेरिस-1789) के बाद यह संगठन 1993-1994 तक आतंक प्रचार का काम करने लगा। अंततः इन्होंने अपना संबंध अतिक्रांतिकारी वामदल से जोड़ दिया।

[21] *लुईस नवा* : इस महान व्यक्तित्व का समय 1914 से 1917 तक है। 1926 से 1970 से यह फ्रांस का शासक था। इनका जन्म पायसी फ्रांस में हुआ था। 1248 इन्होंने सातवें क्रसेड का नेतृत्व किया था। किंतु इजिप्ट एंड रेंडसम में यह पराजित हुए। (क्रसेड – यह वह आर्मी है जिसका स्थापन इस्लामिक आधिपत्य पवित्र भूमि को फिर से छुड़ाने के संदर्भ में की जाती है) इन्होंने 1270 में नवीन क्रूसेड की स्थापना और नेतृत्व किया। इनकी मृत्यु **TUNIS** में प्लेग के कारण हुई।

[22] *मैकेडोनियंस* : मैकेडोनिया में रहने वाले प्रजाति, मैकेडोनिया ग्रीस की राजधानी।

[23] *मेमेल्यूकस* : यह गुलाम सैनिक का एक आर्मी संगठन है। इसकी स्थापना इजिप्ट में सलाद्दीन द्वारा 1170 एस में हुई थी। इनके नेतृत्वकर्ता ने एक व्यवसासिक और उच्च कोटि की आर्मी तैयार की थी। इन्होंने इजिप्ट में अपना शासन जारी रखा तब तक जबकि कि ये 1811 में मोहमद अली द्वारा पराजित न हुआ।

[24] *पाब्लो नेरुदा* इनका समय 1904 से 1970 तक है। यह एक विख्यात कवि होने के साथ-साथ कुशल कूटनीतिज्ञ थे। इनका जन्म पेरोल चिली में हुआ था। इनकी ख्याति **veinte poems de amorna una coneion desesperada. 1924** में

इन्होंने 20 प्रेम कविताएँ और हिंसात्मक व अनुशासनहीन कविताएँ लिखीं। इनके अन्य कार्यों में **Residencia la tierra** 1925 से 31 तक (भूमि के वासी) और कैंटो जनरल 1950 (सामान्य गीत) इन्होंने 1971 में साहित्य का नॉबेल पुरस्कार प्राप्त किया।

[25]*निकोलस सेकंड* : इनका समय 1868 से 1918 तक है। ये रूस का अंतिम अधिपति था। इसका कार्यकाल 1895 से 1917 तक है। इनका जन्म सेंटपीटर्सबर्ग रूस में हुआ था। सन 1915 में निकोलस ने रूसी आर्मी का नेतृत्व अपने हाथ में लिया था। इनको परिवार सहित येकाटेरीन बर्ग में गोली मार दी गई।

[26]*ओस्लो* : ये शहर 59 डिग्री 55 नॉर्थ, 10 डिग्री 45 ईस्ट में स्थित है। इसकी कुल आबादी। 474000 है। यह नार्वे की राजधानी है। इसकी स्थापना 11सी एनैस्टिक भाषा के प्रभाव के अधीन हुई। 14सी में आग लगने के कारण इसका विनाश हो गया। 1624 में इसका पुनर्निर्माण क्रिस्टिन **IV** ने किया। 1905 में इसका नाम क्रिस्टीना कर दिया। सन् 1925 में इसका नाम फिर से बदलकर ओस्लो रखा गया। इस शहर में नार्वे का सबसे बड़ा बंदरगाह है।

[27]*पेटागोनिया* : इस क्षेत्र का क्षेत्रफ़ल 489541 वर्गकिलोमीटर / 188963 वर्ग किलोमीटर है। यह साऊथ अर्जेंटीना में स्थित है। सेमी एरिड टेबिल लैंड से लेकर टेरिस से अटलांटिक किनारा होता हुआ एंड्स तक है। 19वीं के आसपास इसके यहां बनाए हुए कई विशिष्ट चित्र, खासकर दीवारों में देखने को मिलते हैं।

[28]*परसे पॉलिस* : यहां ईरान के पहाडियों के दृश्य देखने को मिल सकते हैं। यहां एकामेनिड परसिया ने शासन किया। इसके बाद में सिकंदर ने 331 बीसी में इसको अपने अधीन कर लिया।

[29]*स्तालीन ग्राद* : द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यहां एक बड़ा युद्ध लड़ा गया था। यह युद्ध नाजी जर्मन तथा सोवियत रूस के बीच लड़ा गया। यह युद्ध स्तालीन ग्राद (अभी बोल गो ग्राद हो गया है) शीतयुद्ध के समय यह लड़ा गया था। 1942-43 । इस युद्ध में 70,000 जर्मन सैनिक मारे गए। इसी युद्ध में जर्मन छठी आर्मी ने

आत्म समर्पण कर दिया था। यह युद्ध इतिहास में काफी महत्व रखता है क्योंकि इसी युद्ध में संयुक्त शक्ति की विजय को सुनिश्चित किया गया था।

[30]*वियतनाम युद्ध* : यह युद्ध उत्तरी और दक्षिणी वियतनाम के बीच लड़ा गया था। जो क्रमशः वामपंथी और गैरवामपंथी विचारधारा से संयुक्त थे। यह युद्ध प्रथम और द्वितीय इंडोचाइनीज के नाम से प्रसिद्ध थे। पहला युद्ध 1946 में हुआ जब फ्रांस और वियतनाम के बीच संधिवार्ता टूट चुकी थी। इस युद्ध में फ्रांस की विजय हुई। डिन बिन प्यू (**dien bien phu**) 1954 में यह युद्ध आ। इसके पश्चात जिनेवा समझौता हुआ तथा वामपंथी लोगों ने उत्तरी वियतनाम में अपना शासन सुदृढ़ किया। सन् 1961 में संयुक्त राष्ट्र ने उत्तरी हिस्से में बमबारी की। 1968 तक 500000 संयुक्त राष्ट्र के बटालियन इस युद्ध में शामिल थे। 1973 में इनकी वापसी हुई। सन 1975 में सारे बंधकों को रिहा किया गया जब उत्तरी क्षेत्र पर पूर्ण रूप से अधिपत्य हो गया।

[31]*पारथेनन* : यह एक मंदिर है जो एथेना पार्थो लोस को समर्पित है। इसका निर्माण 447 से 433 बीसी में हुआ था। इसकी देखरेख फ़िदियस ने की।

[32]*बूदापेस्ट 1956* : सोबियत सेना द्वारा जनआंदोलन को कुचला गया था।

[33]*प्रेग* : 1968 उदारीकरण को दबाया गया। जिसके कारण वहां जनता के कम्युनिस्ट शासन के खिलाफ़ असंतोष फ़ैला और 1968 की ही प्रतिक्रिया ने 1989 में कम्युनिज्म शासन का अंत किया।

[34]*बर्लिन वाल* : यह ठोस दिवार पूर्व जर्मन सरकार द्वारा 1961 में बनाई गई थी ताकि पूर्व बर्लिन को मुख्य शहर से अवरुद्ध किया जाए। यह क्षेत्र तीन मुख्य पश्चिमी शक्तियों द्वारा उसके अधीन कर लिया गया था। इस दीवार को खड़ा करने का मुख्या कारण पश्चिमी जर्मनी के लोगों का प्रवास रोकना था। यह प्रवास पूर्वी जर्मन के आर्थिक व्यवस्था को आतंकित कर रहा था। यह दीवार इस बात का बोध कराती है कि इसमें कई पश्चिमी जर्मनियों की जानें गई हैं जो कि अपने आप को पश्चिमी प्रांत से मुक्त कराने की कोशिश कर रहे थे। सन् 1989 नवंबर के आसपास

कदाचित यह दीवार खुली । इसके खुलने के पीछे राजनैतिक सुधार पश्चिमी जर्मनी में काफ़ी कारगर था। अभी इसको गिरा दिया गया है।

[35] *एकतार* : एकतार का संगीत वाद्य

[36] *मारवर* : एक लोहे या संगमरमर का टुकड़ा भलीभाँति चमकाया हुआ। "जिस पर कि कांच धमनी लुढ़कती हो या अग्नि नली पर रखे हुए प्लास्टिक गिलास को आकार देता हो।

[37] *कौंटिल* : एक लौह छड़ जिसका इस्तेमाल कोमल गिलास पन्ने में होता है।

[38] *तुर्रा* : एक छोटा कोण के आकार की टोपी जो पंजाबियों के द्वारा पहनी जाती है ताकि उसके चारों तरफ़ पगड़ी बांधी जा सके।

[39] *निहंग्स* : एक सिक्ख धर्मावलंबी, जो ज़्यादातर गांव में रहते हैं। निहंग्स लोग नीले वस्त्र पहने होते हैं और अक्सर भाला लिए होते हैं।

[40] *पोजीडोनियंस* : जैसा कि जाहिर है कविता शुरु होती है कवाफ़ी नाम की कविता से जोकि इस तरह चलता है (एडमंड किली और फ़िलिप सेरार्ड के द्वारा अनुवादित) टाइरेनियंस लैटिन और दूसरे विदेशियों के संपर्क और मिलने जुलने के कारण पोजीडोनियंस आपनी ग्रीक भाषा भूल गए। उनके पूवर्ज एकमात्र चीज जो उनके पूर्वजों में बच गई वो थी एक यूनानी पर्व और खूबसूरत रीति रिवाज उनके वीणा और बांसुरी तथा वाकयुद्ध और मालाओं के साथ और पर्व के अंत में यह उनकी आदत थी कि वे एक दूसरे से उनके प्राचीन रीतिरिवाज के बारे में बातें करते थे और बार फिर यूनानी नाम बोलते थे, जिनसे शायद ही कोई अब तक परिचित था। और इस तरह हमेशा उनके पर्व की समाप्ति काफी दुखद होती थी क्योंकि वे याद करते थे कि कभी वे भी यूनानी हुआ करते थे और यह भी कि किसी समय वे भी मैगना ग्रेसिया के नागरिक थे लेकिन अब वो कितना गिर चुके हैं और कितना बदल चुके हैं जंगली की तरह रहते और बोलते हुए। अपनी यूनानी सभ्यता से विनाश पूर्वक कटे हुए।

[41] *फ़ालगीर* : फ़ालगीर भविष्यवाणी करते हैं, अचानक ही कोई किताब उठाकर, साधारण कविताओं की किताब (हाफ़िज के द्वारा लिखित) और जो भी पंक्ति मिले उसका मतलब बताकर।

[42] *तासगीर* : तासगीर एक छिछले कटोरे के पानी में देखकर भविष्य बताते हैं जिसका ब्यास करीब एक फुट होता है (इस्फ़ाहन इज हाफ़ द वर्ल्ड – सैयद मोहम्मद अली जमाल के द्वारा लिखी गई पुस्तक को इसके लिए देखें)

[43] *हिंदी मिस्कीन* : अरब का एक मुहावरा जिसका मतलब है दरिद्र भारतीय।

---

[1] द कैंब्रिज पेपर बैक इनसाइक्लोपीडिया, सं.–डेविड क्रिस्टल, पृ.110
[2] वही, पृ.126
[3] वही, पृ.341
[4] वही, पृ.21
[5] वही, पृ.05
[6] वही, पृ.15
[7] वही, पृ.15
[8] वही, पृ.30
[9] वही, पृ.52
[10] वही, पृ.137
[11] वही, पृ.159
[12] वही, पृ.174
[13] वही, पृ.212
[14] वही, पृ.237
[15] वही, पृ.277
[16] वही, पृ.277
[17] वही, पृ.303
[18] वही, पृ.325
[19] वही, पृ.373
[20] वही, पृ.443
[21] वही, पृ.512
[22] वही, पृ.521
[23] वही, पृ.533
[24] वही, पृ.600

[25] वही, पृ.608
[26] वही, पृ.637
[27] वही, पृ.652
[28] वही, पृ.661
[29] वही, पृ.817
[30] वही, पृ.910
[31] वही, पृ.650
[32] वही, पृ.127
[33] वही, पृ.690
[34] वही, पृ.89
[35] ए समर ऑफ टाइगर्स, पृ.71
[36] वही
[37] वही
[38] वही
[39] वही
[40] वही
[41] वही, पृ.72
[42] वही
[43] वही

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ :

दारुवाला, केकी. एन. : *ए समर ऑफ टाइगर्स* (अंग्रेजी)
हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स, इंडिया, 1995

सहायक ग्रंथ :

अग्रवाल, कुसुम : *अनुवाद शिल्प : समकालीन संदर्भ*
साहित्य सहकार, दिल्ली, 1999

कुमार, अजीत (सं.) : *बच्चन रचनावली, खंड 4, 5*
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983

कानूनगो, इंदु प्रकाश (अनु.) : *अनंत में फैलते बिंब*
संवाद प्रकाशन, मुंबई,
प्रथम संस्करण, 2004

गुप्त, गार्गी (सं.) और
भोलानाथ, तिवारी : *अनुवाद का व्याकरण*
भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, 1994

गुप्त गार्गी, रणजीत साहा,
विमलेश कांति वर्मा (सं.) : *अनुवादबोध : 'अनुवाद'* त्रैमासिक में प्रकाशित प्रतिनिधि तत्त्वों का संकलन
भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली, 1990

गोपीनाथन (सं.) : *अनुवाद की समस्याएं*
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993

जोशी, उमेश : *अंग्रेजी की श्रेष्ठ कविताएं*
वैराइटी बुक हाऊस, नई दिल्ली, 1999

तिवारी, बालेन्द्र शेखर (सं.) : *अनुवाद विजन*
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1996

तिवारी, भोलानाथ : *अनुवाद विजन*
शब्द सागर पब्लिकेशन, दिल्ली,
सातवां संस्करण, 1989

नसीम, कमल : *ग्रीस पुराण कोश*
अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1983

नारंग, हरीश : *समकालीन भारतीय अंग्रेजी कहानी*
साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1995

नौटियाल, प्रभाती (अनु.) : *रुको, ओ पृथ्वी* (मूल स्पैनी : नेरूदा पाब्लो)
साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1997

बोरा, राजकमल (सं.) और राजूरकर : *अनुवाद क्या है?*
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993

भाटिया, कैलाश : *अनुवाद कला : सिद्धांत और प्रयोग*
तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1991

सिंह, दिलीप (सं.) : *अनुवाद–अवधारणा और अनुप्रयोग*
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1988

सिन्हा रमन : *अनुवादक और रचना का उत्तर जीवन*
वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002

अंग्रेजी ग्रंथ :

दारुवाला, केकी एन. : *अण्डर ओरियन*
इंडस पब्लिकेशन हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स
नई दिल्ली, 1970

दारुवाला, केकी एन. : *एप्रिएसन इन अप्रैल*
राइटर वर्कशॉप, कलकत्ता, 1971

: *क्रॉसिंग ऑफ रीवर*
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1976

: *द कीपर ऑफ द डाइड*
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1991

: *विंटर पोएम्स*
अहेड इन द प्राइसेज, दिल्ली, 1982

: *लैंडस्केप*
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1987

सिंह, आर. के. : *एसेसमेंट ऐज़ ए पोएट : केकी एन. दारुवाला*
प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 1992

लेविस सी. डी. : *द पोइटिक इमेज*
जॉनथन केप लंदन, 1966

वेले जॉर्ज : *पोइटिक प्रोसेस*
रूटलेज, लंदन, 1953

शब्द कोश :

क्रिस्टल, डेविड, कैंब्रिज इंसाक्लोपीडिया, कैंब्रिज यूनिर्विटी प्रेस, तीसरा संस्करण, 2000

मद्दाह, मुस्तफा खां मुहम्मद, संकलनकर्ता, उर्दू–हिंदी शब्दकोश, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करण 1949

हिंदी साहित्य कोश, भाग–1, पारिभाषिक शब्दावली, वाराणसी ज्ञानमंडल लिमिटेड, तृतीय संस्करण, 2000

ऑक्सफोर्ड एडवांस लर्नर्स डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, सातवां संस्करण, 2004

रॉजेट्स थेसारस; भारतीय संस्करण 2004, दिल्ली

कॉलेंस थेसारस, कॉलेंस एण्ड इंप्रिंट ऑफ हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स, चौथा संस्करण 2004

वेबस्टर्स, डिक्शनरी एण्ड थेसारस, डी एस – मैक्स, कनाडा, तीसरा संस्करण 1995

द कंसिस ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, संपादक – डेला थॉम्पसन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नवां संस्करण, 1997

In the pit of our breasts we are together,
in the heart's plantations we traverse
a summer of tigers.

Pablo Neruda

Of Brutus and Borges

Players change, but not the crime,
dagger-moment, word and deed.
On the abacus of time
history rearranges beads;
pulls out from her fading past
the same star-clusters, symmetries,
on changing skies; behind simulacra
the darkest heart of mysteries.
Brutus has been seen and now
nothing can reverse the tide.
The stricken Consul finds this worse
than knife-wounds nestling at his side.
Caesar cannot live through this,
his spirit so completely broken.
To support the others, Marcus Brutus
need not raise his arm in token.

Over to Buenos Aires now
where the pulse beats hot and loud.
A gaucho being assassinated
sees his godson in the crowd,
a knife held steady in his hands.
"*But Che* !" he calls.
Don't read the words, but hear the sound,
says Borges. The gaucho falls
hacked with love and hate and knives.
Through bloody wounds, life flows out clean;
He dies, not knowing he has died,
to re-enact a Roman scene.

Invoking the Goddess

It was an ordinary hill
with a goat-track
and a small temple at the top;
a hill which had never darkened
to an omen
or thrilled to an augury.
And Kartikeya
maker of myths
and intoner of hymns
sat through half a lifetime here
praising the goddess
and unburdening the visions
his blind eyes could not see.

Words came to him, humming
along the strings of his *ektar*,
the music came from above,
they said, and his face took on
a light-on-water shimmer
when he sang.

People, as they came
halfway down the hill
from the temple of the goddess
dropped coins on the mud floor
where he sat.
Children, the first time

hurried away
frightened by the rondures
of his snuffed out eyes;
the eyes of the blind
always appear larger.
But notes from his ektar
caught them by the wrists
and the lilt in his voice
pulled them back to him.

He sang from memory
as the blind always sing
so that half his music
passed into folklore.
Many of his verses
disappeared with him
barring the one
he scribbled on a slate
the day before he died.
It read like a letter
to the goddess:
"There's no escape from each other
we both know that.
Either I crawl to your threshold
or you descend
on the nervous stillness that is I.
I await you
like a chord
apprehensive
of a musical note."

History

History always came from the north.
It generally had an aquiline nose
and browner hair
and a lighter tone of skin.
I've forgotten the colour of its eyes.
History always came on horseback
clad in britches, stinking of unwashed bodies, holding
stronger-thewed bows
and spark and powder and matchlock.

The horsemen were always hungrier;
the look in their eyes so intense
it drilled a hole through the mountains.
Screened by hedges and thick woods
and their own uncombed hair
the peasantary watched
as they would have if a
herd of wild elephants had passed.
Returning to their villages unconcerned,
they put a fresh coal in the hubble-bubble
and warmed their hands before chaff-fires.
Until the village was raided, that is,
and the grain bins were emptied
and men were drafted to carry loads
and the younger raiders laid their hands
on the trailing hair of fleeing women.
In the meantime the bigamous
or trigamous Raja

while countering the intrigues
of his oldest wives against
the latest addition to the harem
was left with no time for strategy.

The astrologer too had kept him busy.
Side-stepping the malefic Rahu
and avoiding the shadow of Saturn
on the sundial of your horoscope
can be a fulltime job.
After imbibing some hash
the Raja's infantry and elephants
charged pell-mell.
The matchlock made a hash of their advance
and the pachyderms turned trumpeting
and trampled the men;
then the enemy cavalry
attacked from the flank
and no one knows if the Raja
died or fled; history
loses interest in defeated kings.

But there were no crossroads here
and no going back.
You came across the mountains
and settled down
and the buffaloes calved
and the water pails rang faintly
as milk from the udders hissed into them.
The women bore children
year after year, uncomplaining,

and the boys brought the cattle home
in the evening
and the women brought the firewood.

But what of the dry-leaf fires and the sulphur dawns
and sunlight buzzing on a moth's stained-glass wings?
And the drummer boy who fought with the landlord
and ran away to become a bandit ?
And the pretty village girl who eloped
and was found later in a city brothel ?
And the missing *nautanki* dancer
who was found in the Swami's bed,
the Swami often photographed lying on a plank of nails;
and his acolytes who were furious
not because they discovered this liaison
but because they'd never known he had a proper bed!
And the shikari who came for jungle fowl
but lost his shotgun and his right arm
because the cowherd took him straight to the tiger's lair?
This too was history
though no one ever wrote it.

Finalities

They were no strangers to tranquility
and their hieroglyphs never spoke of war.

Though they had cleared the swamps
they lived at peace
with crocodile and hippo.
A decent place it was
where the river-silt
was as sacred as the river.
There was laughter everywhere, and corn.
Each ate the bread from his own threshing floor
and all daughters married in the tribe.

Inequities there were, of course:
if land was sold
the tiller went with it.
The poor could not worship sun or river
and there were bickerings:
Was dew a lunar oblation or a solar one?
And the loud-mouthed divinity of the cataract,
was it a god or goddess?
Flint was honoured - it gave them fire
and arrow-heads.
Animal masks gave their dreams a nudge
and they woke up to the same animals
around them next morning.
Dream and life
were of the same warp and the same weft.

Then one day, while digging, a man
hit a seam of metal with his flint axe.
And the dreamer of the tribe dreamt
(he had never done anything else)
that his body was pervaded with light
and a cavernous voice
spoke to him about the one and only Lord.

And laughter left the tribe
even as God and iron entered.

The Glass-Blower

He knew about glass and its history:
beads of the vintage of Amenhotep;
the Niniveh tablets of Assurbanipal;
blowpipe, marver, pontil, each successive step

Which fire took to make clay transparent.
"Glass is not in the family", he said.
"My forefathers were alchemists, sublimators
of baser alloys alike zinc and lead;

believers in a four-cornered universe
of water and air, earth and fire.
They spent a lifetime with bellows, furnaces.
They were metallurgists, but they aspired

to mysticism. Alchemy for them was not some quack technique
harnessed to greed of wealth.
The goal was transmuting the earthy
into the celestial, sickness into health.

Now things are changed; a philosophy slips out
as an age loses its teeth. Nothing holds fast.
Decay sets in with birth:
we rust like iron, we splinter like glass."

2

We walked past litter to his boiler room
where a reed-thin boy in a tattered vest
and a lost fact dipped his blowing iron
into a small vat of silica paste.

The furnace, fitted with fire-clay pot and flue,
crackled and hissed. The stilt legs of the boy
glowed faint red on the shin-bone as he put
the blowing iron to his lips and blew.

His cheeks turned to hemispheres, fully blown;
his neck, corded and veined, struggled up to the nape
with his exhalations. A blob ballooned
at the pipe's other end and froze into shape.

A smell of burnt resin, fossil gum, miracles,
of just-fallen lightning came from the bowl,
as it should, with clay altered to replicate
the luminous transparencies of the soul.

The first time men saw this state of mist,
this veil that veiled nothing - O glorious deception -
and glass cool into colour of space, did they cry out
"This is no object, it is thought, perception !"

The Last Whale

When the last whale passes into our Lord's keeping
how will the funeral go?
Wil the last post ring out, will there be muffled drums?
A dead Viking, we are told, was laid out
in all his regalia—the mail - shirt unflapping,
his painted shield hanging along the bulwarks,
his drinking horn to remind us of his revels,
sword and battle-axe in memory of his rages.
And they hoisted a square sail
handing boat and body to the wind.

But this is not how it will go at all.
For as the last whale is pulled in
from blood-darkened seas, speared
by a harpoon stuffed with explosive,
he will be sliced up with power-saws
and the deck will be slick with blood and blubber.
Murdering them by the shoal
(nine hundred) for 'research'
is big business in Japan.
For fifty million years whales cruised the oceans,
as intrinsic to the sea as tides,
as reefs, as molluscs, as sea-anemones,
now slaughtered to discover
how they survived that long.

When the last whale moves into our Lord's keeping -
the wake abuzz with flies and a procession

of gulls as there never was before -
and the seas turn the colour of red wine -
they'll wonder if this is omen or miracle.
Neither ! Just the gashed side of a harpooned whale.

The sea-god, his eyes red with salt-burn,
his beard turned to coral, extends his palm
to ask what's in store for him.
As many stars as there were before
to brood over tides and chart the course of ships;
the same number of icebergs, more or less;
more oil slicks certainly and tanker fleets,
more aircraft-carriers and submarines. No whales.

Of Mohommad Ali Pasha

We had been into the El Gabal citadel
and the Military Museum housed inside;
walked past prints that showed Thutmose and Rameses
crushing their foemen under chariot wheels.
The medieval contraptions of war were there
from sword and catapult to fireball and matchlock;
and a battering ram known as 'Al Kabash'.
After walking past history, at least
the official version, from thrashed crusaders
and Louis IX led captive before Saladin
to the modern campaigns, Yemen in the fifties
and the Yom Kippur war, we came
to the Mohommad Ali Pasha mosque
and the guide took us over the great man's house.

"Welcome to Mohommad Ali Pasha house !
He himself live here in nineteenth century
and rule Egypt in same century.
These walls strong, but the Pasha even stronger;
hard with Egyptians and hard with Mamelukes.
Hard with wife also, but that only presumption.
Come, embroidery class held in inner room.
See how fast their hands work - like pickpocket.
Pickpocket take away what Allah give;
Allah not give back what pickpocket take away.

These embroideries we send to Saudi Arabia.
In the past we sent them because Saudia very poor.
Now we send them because Saudia very rich !

"Now you must see dining room. Those days
no eating and sitting room separate;
where you eat you sit and where you sit you eat.
There were Mamelukes those days, very headstrong,
who listen nobody, not Sultan in Istanbul,
not Mohommad Ali Pasha in Cairo !
You know what they kept? Bad faith and concubine;
bad faith with people, bad faith with Ottoman empire
bad faith with Mohommad Ali Pasha.

"So Pasha invite Mamelukes in dinner.
This wooden couch where you sit, see how it open?
Inside he place musket, many musket.
Then lid closed; no one know where muskets sleep.
He called Baltagis to serve meats and viands.
You know Baltagis? Axe-men;
people who were paid to wield axes once.
Pasha start paying them now to wield guns.

"When Mamelukes take dinner and finish coffee
Axe-men take muskets and finish Mamelukes.
Only one Bey escaped, all others .kilied.
Mohommad Ali Pasha, very clever man !"

Cargo

It was all skim and surf
and hard wind-nudge
in the taut belly of the sail
as the boat left its latitudes.
The African cockatoos
swivelled on their perches
and swore in Swahili
at the high-decibel
chirping of the lovebirds.
The quails were morose.
When they placed them beside the falcons
the cages got spattered with bird-lime.

A swarthy pearl-diver
climbed the mast like a leopard
and the captain thought of him
as a black miniature
messing about with the rigging.
Yet, like a gust of fresh breeze,
he entered the dreams
of the virgin daughter
of the imperial concubine.

She had left her teens and her shores
at the same time, smearing
her hands and feet
with a paste of sandalwood bark
and giving her face a herbal wash
each day of the voyage.

Like the quails
the slaves too were morose.
The chains were heavy
and bit into their ankles.
When the sea turned nasty
in keeping with the moods
of the virgin concubine
and the wave-tops stormed into the boat
it was difficult enough
to keep the sacks of aniseed dry
and sacks of ginger and cloves and spices,
without being bothered with slaves
who sloshed around in the salt
and coughed and spat and wilted.

At landfall
it was the captain's turn
to be morose.
Half his cargo had been thrown out.
Death made a big splash
as he went overboard about fifty times
and the gulls remained right behind the wake,
following the honey-sweet
smell of dying all around.

But the island-king forgave
the dead birds and dead slaves their dying;
as two half-naked Nubians
carried the litter
smelling of sandal-paste
into his island-harem.

Night Thoughts While Travelling

Tu Fu

Thin grass swaying
on the river bank.
The sail boat's utter solitude;
tall mast steady
against wind and night.

Star-fall across the endless plain
and the moon flowing
with the great roar-river

Youth and the river's darkness
and the night's darkness
flow by.

My poems are not a flame
that could light up the night
of old age and anonymity.

Afloat on a current
between river and sky
a lonely black gull, I.

The Chillum

Summer passes high over the mountains;
a bird sings somewhere
        a cloud peels off from the sky.
In a high pasture hut, logs, grass, colours.
So many colours which
speed across the eye, like clouds.
Outlines bend outwards
and warp and straighten and warp.
Thoughts open up like parachutes
and drift away, as if a strong wind
has carried them into the woods.

Yet the two of them sit
as inert as inertia.
All they do is
take the chillum to their lips.
Flame and powder
and the left palm overshadowing the right,
and the mouth homing for the butt
of the embering clay pipe.

Ecstasy is smoke, smoke ecstasy,
as the thin, reedy, ever so long-drawn
inhalation occurs.
Voids are sucked in, tumbling over other voids.
Colour bands, or what looks like colour bands,
start palpitating on the blood-margins of vision.

Speech and laughter quiver on a plane
that had jumped levels,
a higher wave band, heat band of half hysteria.

And things blur out of focus
as eyeballs turn askew.

Summer passes high over the mountains;
a bird cries out somewhere
        a cloud peels off from the sky.

To Georges Braque

(On his Painting, "School Prints - The Birds")

The sky needn't
be at the top.
It could be
a blue backdrop
rough in texture,
something you could feel;
stronger than ether
or the ethereal.
Then paint a star.
Don't go back very far
to a dead quasar.
Who wants some burnt out hell?
David's star
would do as well.

When you paint a bird
we remember
it is older than words,
younger only to air
or water or meteor fires.
Don't potter around
too much with wings or down.
What if it has stilts for legs
or a tripod for claws?
Paint and flight have different laws.
When all that rigidity

explodes through the window
of the painting
into the sky
imagine how the bird will fly.

Reach for hope
and your periscope
and draw your fish
let the line waver
dot the eye
and discover
blue of sky
turning blue of sea.
In any case, 'ultramarine,'
a seaweed word, came from the sea.

The sea and sky on one square board
star and fish and static bird.
Rest your brush and eyes and oars.
Kites and fancies, let them soar.
Perspective isn't worth a kopek.
That window, blue with light, make opaque

and on the plaque
sign Braque.

The Foal

Always when the foal is born
night is over
it is dawn.

Here the night is grey and young
the stars crawl upwards
rung on rung.

The first cold feel of splintered glass:
the dew condensing
on the grass.

In store for them is freezing cold
for mother mare
and coming foal.

A bed of straw is snugly laid
sheaf on sheaf
and blade on blade.

The farmhand sees through creaking door
her hooves turn restless
on the floor.

She circles round but doesn't groan,
a restless stammer
on the stone.

Then she lies down on the straw
the foal has started
moving now.

Soon a bag, toy horse, and blood
lie gently heaving
in the mud.

Four thin twig-like legs appear
to sign the end
of this dark year.

For quite sometime the legs don't kick.
The foal awaits
the mother's lick.

Where's the dark and where's the cold?
the mother's steam-breath
warms the foal.

Slowly the eyes are licked quite clean
and sight appears
through webbed screen.

Always when the foal is born
night is over
it is dawn.

Ratfall

Scurrying through dark waterways we sometimes find
ourselves in the open, where you can observe
the sun's broken bulb shivering under the waterline.
We can't pause and admire, we haven't got the nerve.

The open stretch is frenzy ! Leap to the next
dark hole. At times it has come to pass
we've landed in snake-pits, but the snakes have gone,
for fragile as ever, the earth cracks up like glass.

When the earth thunders rather than the sky,
and nothingness broods, dust-whiff and stone;
and ripping through the dark-heaving underground,
comes the half-roar and the half-moan,

women migrate slowly and with much ado:
wails, silence alternate. They sift through stonefall
for trinkets. Who notices how we bounce and go
where dark instinct and the charred night call?

The skies tilt a little as we come up,
but not the earth-crust. We traverse the cracks.
Other disasters grab us by the throat.
Fear and the flea sit on our rubber backs.

Of a sudden there's commotion, even though
the sky's stopped tilting and the earth is still.
Our pointed noses and our soundless feet
trigger panic as some of us take ill.

We flail around in a kinetic explosion
lurch zigzag and flop, petrified and grey.
The slum-bastioned, sewer-city comes apart;
each street, with its headload, goes its rural way

rootwards, on sizzling rail tracks, to the pipal tree,
its stone slab Hanuman, carved rather flat.
The emptying city looks out for a prayer.
But after the ratfall what requiescat?

Of Dreams

He dreamt of hell-fires, or thought he did.
Neither in your senses, nor in sleep,
do you dream such rubbish, he thought.
(The worm of doubt was already gnawing deep,
asking how dream, and thoughts on the dream,
could run on the same spool, alongside each other.)
Someone knocked on the backdoors of his mind
through vaporised past, through distance, ether.

The voice had an edge as it rifled through the din:
these were not sin-fires he was roasting in.
Who burns for anything these days, surely not the dead?
They sit at the Board of Directors instead.

In this day and age it doesn't seem
anyone's afflicted with this hell-fire dream.
Why me then? he thought. Why do I get bogged?
(his thought groped, smoke-stung, through a fire-fog).

A tail of sparks behind a cinder's fall;
and he woke up, turning
on his side, heard someone banging on his rear door;
found roof and rafter burning.

Childhood Poem

(For A. K. Ramanujan)

There's precious little to a childhood once
you've forgotten it. One can probe no further.
In limbo, one absence, one vacancy
is as good as another.

'Why can't you remember? 'my wife asks, 'I can.'
I do not answer, wish to avoid friction.
I couldn't be unique in my forgetfulness.
Childhood is a fairly common affliction.

My few memories are of Lyallpur.
now Faisalabad, named after the king.
If Idi Amin had signed a large enough cheque
they would have named this dustbowl after him.

First memories: dust storms I can still taste, one mulberry tree
in whose dark shadow we gorged on fruit.
I don't recall kites, spinning tops, birds;
no other tree, nor trunk nor branch nor root.

Sacred Hearts School and Italian fathers,
bald, bearded, stout.
War made them prisoners of war. When they stitched
the school up with barbed wire, Father pulled me out.

Arya School; God save us from the Aryans.
Boys spilled in from an orphanage nearby
with pockmarked faces and purple splotches.
'Sing' ! I sang 'London Bridge is falling down'.
The refrain 'My fair lady,' they thought, was obscene
and reached, (thank God) for their own respective crotches

We sat on jute strips spread out on the grass
a 'takhti' resting on the right thigh;
dipped our quills in clay inkwells and set out
on the seas of Urdu calligraphy.

The pen was no wand, instead of the rondures
and scimitar curves of the Urdu alphabet
I produced serrations and smudges,
charred centipedes on a wooden slate.

When the Master wanted sleep he shouted 'Tables' !
We learnt them by rote in an endless choric drone.
It was not memorizing but amnesia.
I would nod into sleep without a groan.

The Master, Chaitandev, wore *turra* and turban.
You could play golf with his eyeballs, grotesquely askew.
When you thought he was looking the other way
you fell in his distorted line of sight. He had you

by the wrist, gave it a corkscrew turn
and rammed his fist in the pith of your back.
You threshed the floor gasping for some moments
and then flopped inert like an empty sack.

Kanwar Ram replaced him, he wore salwars
wide enough to have blocked the road.
Strong in his biceps and arithmetic
the replacement didn't bode me any good.

My iron slate had shed its frame. As I assailed
him with my scrambled digits I could feel
his anger and fled. The slate, hurled like a flail,
severed flesh and tendon, an inch above my heel

and laid me low for a week.
One other memory lingers
A swooping kite that makes off with
a crumb of bread from between my fingers.

I was taken piggyback to watch *moharram*
streaming down the radials to the Gol Bazar.
A clutch of chained knives played a jingle on their backs.
The dead saints saw to it they left no scar.

Two years before Muslims asked for another country
the way you reach out for another piece of bread
we left Lyallpur for Junagadh.
Left two brothers behind, now one of them is dead.

They went through hell, that is, Punjab, Sindh, Rajputana;
showing sacred threads each time to prove a different case:
not Hindu first, not Muslim later. One took shelter
in a brothel - lucky guy, I wish I were in his place !

But what they told me then is vivid still.
The summer of 1947.
The sabre procession two miles long, blue-robed Nihangs
and an overhang of dust like a scourge from heaven.

The procession snaking like a turban unwound.
Fiery slogans, sabres drawn:
'Akhand rahega Hindustan !
Nahin banega Pakistan' !

But I wasn't there, the procession for me
was a string of long-robed spear-headed words.
What can one say when simulacra turn vivid
and the real gets blurred ?

Beyond this I recall nothing
the gates of memory have been closed.
Sometimes I mourn for this loss of faces;
that haunted past, now sadly devoid of ghosts.

The World of George Keyt

The eye of the blue Gopal keeps track of me
as if mounted on a swivel-gun.
I walk six paces to the left
six paces to the right
and the eye of the indigo cherub follows me.
The eyeball is just a black, inverted cone
yet it stalks me like a taut bow.
Have I walked into a haunted cave ?
Wrong. It is I who am the ghost,
a spectral wisp in the house of the living.

For everything palpitates here.
The sandal-coloured limbs pulse with ichor.
The green is brighter than a parrot's plumage
and takes off. The yellows are a quest for light.
The palette vibrates with the warmth of flesh tones
and overwhelms the senses
like the bursting of a musk-pod.

One enters the stroke-hole of agony
that is Shiva-shoka with a sense of awe.
This is the dervish dance of the Mahadeva
maddened by the death of Parvati.
The feet are not there, yet you can hear
their circular rhythm across the cosmic drum.
Three elliptic eyes, a shock of curving hair
show the catherine wheel of his demented mind.
You are drawn into the vortices of its spin,
you move along the lines of tortured grief

scarred from eye to mouth,
a mouth that trembles and vibrates
like a band of light.
And Shakti lies across his shoulders
in the fullness of her body
and the ripened glory of her breasts
and as the eye slurs across her figure
you can almost caress the down upon her groin.

In this forest of luminous limbs
one jostles against the bulge and rondure
of hip, abdomen, thighs.
The women are cult-images here
carved after some canonical formulae
of this saint of the flesh.
Through a maze of geometric planes
their breasts erupt, the axe-blade nose
sheers down like a limestone cliff.
The eyes are massive windows of the soul
half-hooded with passion,
the eyelid heavy as a tortoise shell.

There is a lilt in the line that comes
from the well-springs of joy.
No room for dark angels here,
nor horizons pocked with tragic omens.
All pain is swallowed
in the delicious pulp of the gourded body.
Shiva and Shakti
Purusha and Prakriti wander
through these unchartered south seas of the soul
where the black sails of night
shall never be hoisted.

Oslo Fragment

These nightmares did not thresh his blood:
blue eyes, blond beards, long burning hair
and dragon-prows, all too remote
to cause an archetypal scare.
Lost in the driftwood of this language
at every turn he came across
two intersecting linear strips
the natives here called the cross.
Walked gingerly along the shore,
charred sea-weed-strewn, dark mermaid-haired;
he paused awhile to ask himself
what he was really doing there;
scared of slipping over edges
brittle-iced or furred with moss
and triggering into startled flight
a hoary wide-winged albatross.

Winter View (Midlands)

The fields enclosed, but no sign of someone
driving a stake in or stringing a wire.
The streams sapphire-clear as they ripple over
reflections of long-drowned church spires.
They have superior rain-gods and grass-gods
and clover-gods - the whole earth blessed with green
under skies always cursed with grey—
and all the trees charred by an unseen fire.

Disparate Pieces

A month after the tyres screeched
disparate pieces in his brain
woke up to a kind of life
a kind of memory again,
sieved through haze and film and time.
He shook his head and something stirred.
A parable, a paradigm?
The experts quarrelled and differed.

The doctors said things would come back;
the cells would take their time to heal,
but heal they would with someone's grace.
His wife walked the Sai Baba track.
His furniture came back to him;
recalled the settee and cane chair,
the one on which he would recline,
a table's missing leg, a tear

in the sofa's tapestry.
He recognized the bird design
- they brought the curtain to his room -
the sparrows pecking on a vine.
He spotted his Bokhara rug,
and there it stopped, his memory's sum.
That son - impersonating boy,
He hadn't ever seen the bum.

That woman passing for his wife?
You must be joking. For the record
they asked if he had known of love.
He fumbled with his trouser cords.
The gulmohar in his garden? He
did not know of any tree.
The birds, what did he have to say?
The birds, he said, had flown away.

Fragment

The heaven's blue was in her eyes.
He stammered when he met her first.
Two weeks they moved, hand touching hand;
just once his lips encountered hers.
He groped above her waist and found
her drawing back and knew he'd lost;
despairing, gazed into her eyes,
one blue with sulphur, one with frost.

Letters to Pablo

Dignitaries fell,
wrapped in their togas
of worm-eaten mud
— 'Revolution; : Pablo Neruda

Pablo, as you must have known,
they always fall in their metaphorical togas.
(Caesar, of course, fell
with the real one on his back).

When they are actually felled,
as if by a heart attack,
the ones who gamble
on the stock exchange of power,
are always nailed, as you observe,
to their gilded doors.
They must be seen against
their backdrop, after all.
You can't think of that lady
without her shoe racks now, can you?
Nor the Pahalavi monarch
without the tent city which rose
for that splash at Persepolis.

And one can't quarrel with you, Pablo
as you rail against that 'hen's turd', Franco,

or that 'dead rat' of a Somoza
shot in a swamp (I'll take your word for it)
and Trujillo with the gold teeth,
(your word again, I am not
about to check with his dentist).

We don't know whom to believe; each one
turns the tourniquet when he gets the chance.
The ones who dined on the revolution
for fifty years were no different.
Ceausescu was a bigger bastard
than any dictator on your continent.
But I want to discuss those
who "know hunger like a sacred text",
who egged on all those guys in shirt sleeves
to shoulder spear and axe
and break those walls you talk about.

Now it is the Berlin Wall which has gone down.
The western press makes it look as if
Sodom and Gomorrah have fallen.
When symbol; crash, as you would know,
tremors proceed for a lifetime
and the rip and tear of tissue
can be heard at the other end of the planet.

You've no idea what hi-tech cranes were needed
to dump those Lenin statues in various places.
(Russia didn't have backyards enough).
Now that's a pity, for Lenin was a sculptor's dream,
with that goatee of his
and that bald Byzantine dome of a head.

Those Stalingrad poems would make you blush now
(they should have made you blush even then, Pablo).
You really made heavy weather of it;
"At night the peasant sleeps, awakes, and sinks
his hand into the darkness asking the dawn. ."
Now what made you write such crap, Pablo?
Nobody sinks his hands into darkness,
and no sonofabitch addresses the dawn.

And yet some would give you the benefit of the doubt
for all this was written in another time
and all this was scripted by another age.

You talked of the bombs
and the 'murdering gas' in Vietnam,
but not a word on the Prague of 1968
not a word on the Budapest of 1956;
as if the Soviets never had a tank.

They've registered a case now
on the death of Czar Nicholas.
They could open up cases
where the guillotine was used
in that other place, you know.
A "Station House Officer, Bastille (Erstwhile)"
could play havoc.
Each lettre de cachet signed by the Bourbons
each death warrant served
by the Committee of Public Safety
would be an exhibit, with the court-crier shouting

"Robespierre, son of so and so,
member of the Jacobin Club,
may present himself for investigation."

I don't know how to say this, Pablo,
but things are getting a bit confused.
Just as well you are not around.
You would have been embarrassed.

Letter 2

How is it you
never touched India, Pablo,
with the tide of your resonance?
If you had, would our salt estuaries still
be carrying the burning imprint of your words?
(I've begun sounding like you, you'll notice).
you wrote about the spine of the Andes and
thin-lined Chile, lost between explosion and sunset.
Its foam, sand, and silence lay in ordered stripes
under the shadow of volcanoes and what was embering ash.

You wrote on Patagonia,
and one understands that
and you wrote reams on Mexico,
its red earth and its scalding rain
and its awesome cordilleras
and its "mouths of abandoned mines
its serpents of fire, (its) men of dust."
And one understands that too.
You found an affinity between its cactus
and your own roots, and one can't quarrel with that.

You even wrote on Rangoon,
comparing all its alabaster gods
to white whales and then you switched
to a beggar at the Parthenon, who, waiting
for God, found him busy in another office.
Here too it's the same, God and the bureaucrat
are both out attending meetings when you need them.

But the point is,
if you could write of Rangoon
you could have written about us.
The mud of our country also reveals
itself, petal by lotus petal, green and
lilac-spattered on black alluvial.
Our underworld too is thick with shadows.
We also have our milder-farting versions of
hen's turd, boar droppings and others you despised.

You wrote
of the senator
who spoke up for sugar
and the senator who spoke up for beans.
Only when it came to speaking on rags or hunger,
the senators were absent (the subject perhaps
good for rhetoric but unsuited to philosophic debate).
You wrote of a country named sweat and danger,
hunger, cold and misery. You could easily
have written about my country called
sweat and hunger, heat and misery.
That kind of switch doesn't
need any legerdemain.

In Estatuto Del Vino
you talk of spit on the walls.
Well, you would have seen a lot of it here.
And you talk of 'slow whore stockings'.
I've news for you, our whores don't wear stockings.
So you wouldn't have had a long wait on your hands.
It's they who'd be waiting, ajar, as you would put it.

And you would have
enjoyed talking to Nehru.
He would have given you such a dose
on non-alignment and non-violence and socialism
that who knows, you'd have stayed on and perhaps accepted
a Visiting Professorship at the JNU.

You hated solitude,
I hope I got you right.
And if you have forgotten
I could quote you to yourself:
"Solitude is the world's useless dust
the wheel turning without earth, or water, or man."

Well, you wouldn't
have had any solitude here.
Five hundred millions would have
crowded you from crotch to chin.
Delhi would have been in a tizzy, the U. S.
Embassy would have frowned at the reception.
A robin would have added to her litany of complaints:
You didn't sign this, you didn't sign that.
One never realised
a Third World signature could be that important.

You talked
of the long nights
of the sea that darkly surge
towards the ends of space.
You put it more pithily of course.
"The vastness that Aldebaran watches over."
What a terrific line, Pablo !
(Notice how pitifully I write
about how beautifully you wrote).

Seeing your passion
for night, you would have
loved our night expresses,
the dark-wheeled trundle through the dark unknown;
as, awash with lit rectangles
spilling out of train windows,
the night outside raced you on the tracks;
and the sound, slow-lurching, entered your porous soul,
and wrapped in steam, the engine hoot announced,
as if from worlds afar, from lost sidereal space,
the chance arrival of a childhood dream.

The Poseidonians

Summer after summer
they kept lamenting what they had forgotten
till a mist-moment came
when they forgot the loss they were lamenting

The Poseidonians
(After Cavafy)

[We behave like] the poseidonians in the Tyrrhenian Gulf, who although of Greek origin, became barbarized as Tyrrhenians or Romans and changed their speech and the customs of their ancestors. But they observe one Greek festival even to this day; during this they gather together and call up from memory their ancient names and customs, and then lamenting loudly to each other and weeping, they go away.

Athenios, Deipnosophistai, Book 14, 31A (632)

All it takes to blight a language
is another sun. It's not burn
that does it, or chill, or the way
woods straggle down the hills, or seas
curl along the shingled coast.
It is the women, cowering
in fear, whom the soldiers,
as they clamber down the boats,
first reassure and then marry.

They are faithful, good with grain,
at baking bread and fermenting wine
and unscrambling the fish shoals from the meshes.

They get the goddesses wrong sometimes (but so what?)
confusing mother with daughter.
And there are minor errors
in ritual and sacrifice,
in lustration oils and libations.

A few seasons teach the man
that his woman's omen birds are always right;
her fears travel down the bloodstream
and a new language emerges from the placenta.

What does one do with a thought
that embarks on one script and lands on another?
A hundred years go by, perhaps two hundred,
living with the Tyrrhenians and the Etruscans,
and they discover there is more to a language
than merely words, that every act;
from making wine to making love
filters through a different prism of sound,
and they have forgotten the land they set sail from
and the syllables that seeded their land.

What do they do, except once a year
at a lyre-and-lute festival,
Greek to the core, with dance and contests,
grope for memories in the blood,
like Demeter, torch in hand,
looking for her netherworld daughter?
And weep a little for the Greece they have lost
and reflect on this gulf of years which has proved

wider than the Tyrrhenian gulf,
and the hiatus between the languages,
wider than the Aegean?
What can they do, but weep for Agora
and Acropolis, for ever left behind;
and reflect, how three centuries distant
from the Ionian coast,
they have been barbarized by Rome?

Don't Expect

Don't expect music
surging out of flagstones
as the chapel spills over
with the resonance of church organs.

Don't expect as backdrop
the pounding surf.

Don't look for the diamond-pencilled image
and light granuling through stained glass,
nor hope for fresh words
from a tired language.

Don't look for revelations:
the sulphur match-head
flaring in the dark crypt.

Don't think the high grass will part
as if the wind had been through it
or a tiger had left one of its black or gold
stripes on the savannah.

Lower your sights, reader,
to five feet five, five feet six maybe,
to ground level, to ground - fog level.

This is not the right age
for tall poets.

E-13126

A Tale of Two Statues

Once the tar brushes were out
on the slogan streets
they shifted Victoria to the Police Lines.

There's nothing shamefaced about her
as she stands under the neem,
imperial and abdominous,
dust wedged in the folds
of her bronze robes,
her tiara caked with bird-lime.

But at her feet there are flowers,
Women think she is Devi.

At first sight
revolutionaries ran
jubilant, shouting
"Bowled !" "Bowled !"
as under the pedestal
Gandhi's clay head rolled.

The Akhond at Isfahan

It was after the equinox, when the tulips
take on the colour of Hussain's blood,
that Akhond Abdullah Yezdi
came to Isfahan.
"If he stays here longer
it will go hard with us," said the townsmen.
For his piety was severe
and his fiats were a scourge.

The streets stood unmasked before him,
even the ones where you could not see
the white of an eye in daylight.
He saw the falgir
open the book of Hafiz
for his prophecies, but not the Holy book;
and the tasgir bend over his water bowl
for fake divinations, but he never
saw him bend towards the Kaaba.

Once the lamps were lit
wine started flowing
like blood from Caesar's body.
Dice rolled on the sidewalk
to cheers and ribaldry;
whore-skirts swished past him brazenly.
Not just the face unveiled, but horrors,
even the shoulder blade gleaming !

And as if that was not enough,
those lewd-gesturing abominations
appeared on the streets,
the half-breasted and the semi-wombed.
The Akhond told his followers
"Let's get out of here
before God hurls a thunderbolt
and the city fires trap us."

They rode away as the first watch ended.
But when they camped at dawn
a disciple said: "Those Isfahanis
keep both maulvi and gendarme happy,
with one foot in the stirrup of the world
and one in the stirrup of the hereafter."
His mind's eye turned to Isfahan
and saw prayer mats in thousands
being spread out by the townsmen.
They were thanking the Lord
for ridding them of the Akhond !

The ways of the night are different
from the ways of dawn, he said.
Under the stars you flee from evil
and Allah's expected wrath.
In the morning He tells you,
that spittoon in which sin had rinsed
its carious mouth was a rose-bowl.
They faded together, the calls to prayer
and colours of the dawn.
"Lift camp !" he shouted,
"We go back to Isfahan."

Chess

The pawns are canon-fodder,
standard-bearers resurrected from the past;
old and suffering from gout,
unarmed, their pennons flying at half-mast.

The knight jumps over the wall without a night pass,
hops into the fortress of the enemy king,
bucks in the royal harem where the beauties
cohabit, the lithe ones dance, the ugly sing,

and causes a stampede, as he picks his way
across his notional labyrinth paved wihite and black -
the broken stump of swastika. He whinnies when he is
skewered by the bishop cowled in black

who trapezes along the diagonals and then
retreats behind a thicket of black pawns.
Wherever he stands the valleys converge
he bisects the board with his double prongs.

The rook powers his way like a 4-wheel drive,
cutting a swathe on this chequred stone,
bludgeoning his opponents until exchanged
for a berserk knight, he falls without a groan.

Sitting at a point where eight tracks intersect
waits the tigress-queen, Assyrian, black as fate
pulsing with threat. She is angry as queens are
when married to impotent kings. Her sword-arms eight

crackle with lightning. Yet charged bastions of brick
hold their own, little coordinates mined
by a single artery of tension. There's nothing
she can do but stalk, rage and back away at times.

Marked out for each other's claws, bitch-Pharoah
and the white queen move, stalked by the same fate,
till they drain their chalices of the last drop of blood
and close in with their magnetic fields of hate.

The king seems cramped with protocol, hobbles
one square at a time, wooden of mien.
It's when the rooks and bishops are slaughtered
and the attendants have returned from the funeral of the queen

that he comes into his own and with a knight and pawn
chases the other king. Epic dust now sweeps the board.
Achilles chasing Hector, Darius
hunted by the Macedonians till he is gored !

In the Footsteps of the Sanskrit Poets

Among Friends

Her friend asks:
Does he come from the forest-track
or along the cart road?
Does he jump in through the window
or steal in through the door?
'Fool', she laughed,
'lovers come in with the lightning.

The Jealous Husband to the Neighbour

You, who live just a wall away,
guard her when I am on my travels.
Look out for sounds
not of doors thrown open
but of windows closing.
Watch out, not for the chime of ankle bells
but the clink of the girdle, moving.

Despondency

I will not hear them again
those two-orbed temple bells
upon her torso.
They are putting henna on her feet now
and sandal paste on her breast.
The bells are being polished
to ring to her rightful lord.

Jaisalmer Prophecies

During twilights the yellow stone will glow
so soft the tint one will not know
if it reflects or exhales an inner light.
People living under different blights
will be drawn to it, a drunk muleteer
or a flockless, feckless son of a Pir;
straying from his dhani, a vagabond
a camelherd looking for saltlick or pond'.
And while they toil over scrub and boulder
the Jaisalmer amber stone will smoulder -
a mount of sulphur during day, whereas
under the moon it will glow like topaz.

The Vishnoi will guard the black buck where it stands
and save the peacock from marauding hands.
At the Jain temple the pujari will unfold
a tale he has for a thousand years told:
how Ghori's iconoclastic hordes
hacked at the idols and blunted their swords;
how when the despot had returned to Ghor
the gods were exhibited as before,
plastered in the temple frieze once again,
their noses chopped, elbow and shoulder maimed.
He'll talk of the guardians, the cobra and his wife
gliding to the temple roof during a strife.
In '71 they did not come down
till the war was over, and thus saved the town.

As time rolls by, you don't have to be told
the golden city won't be paved with gold.
Urchins will scamper here and goat kids bleat
and camels pad along the cobbled street.
A haveli front, that intricate fretted face,
will look like carved wood, like filigreed lace.
Mirages will throng to it, levitate, fly
past the white of the desert's eye.

When stars sing to themselves and meteors flare
they commune with each other, these lovers rare.
The town will weave a context for the desert,
the desert a context for Jaisalmer.

Watch-towers on both flanks of the desert will be manned
by BSF and Rangers, spyglass in hand
for shadowy intruders, when all they'll see
is perhaps some lone, intruding whiff of sand.

Insomnia

A cricket lashed the night
with its consonants.
One passing car
left is shadow-patina
on the window—suggestions
of a flickering reality.
Desires gravelled through
the hourglass;
and intermittently he heard
the clock of his passions chime.

American Poetry Workshop

Tossing her coconut-oiled hair
the girl said
after her poem had been read;
"I am sorry, Sir,
but this is not a poem
on the blue god of the Gopis.
My name is Sita.
I am supposed to be in love with Rama."

The Indian Professor
standing next to the visitor
whispered; "Not to worry, Mike.
They are both incarnations of Vishnu."

Chewing on his cigar, the American said,
nodding his head,
"I don't wanna spoil the party.
Have a good time with Rama."

The Middle Ages

Returning as the leaves fell off the year's branches
returning as the light swung low into the eyes
to the blindings in Bhagalpur,
the pot-hole in the middle of the eyes;
someone astraddle on another's chest,
left thumb working the eye into a bulge,
the right hand holding a cycle spoke,
I asked how long can fancy indulge
in such macabre stills? Then news of killers
at the door as cries rang loud
and the males fled. Mother and children cowered.
The hamlet ran short of shrouds.
Helicopters descended before the vultures could.
Journals were full of obituaries.
One hour of being truly brutalized
is worth a lifetime of anonymous misery.
How was it that listening to accounts
of Harijans slaughtered in the villages
my hands started rummaging among dusty shelves
for some dark volume on the Middle Ages?

Not walls emblazoned with heraldic signs
caught my eye, nor crusaders crossing the waters;
but a wretch condemned, bought by the town of Mons
for the public pleasure of seeing him quartered.
Tithe and levy driving the people mad
as the tourniquet tightened. Memory thrives
on a scene, Parisian heralds

announcing an impost and fleeing for their lives.
And plagues, the vengeance of the Lord, that pressed
upon the spirit, as these domed reactors
squat on ours. In their frenzies they never knew
if it was God's curse, rat-flea or vector
that brought it on. Smoke-pots burned in the house
and for remedies, powdered staghorn was enjoined,
and crushed pearl, myrrh and saffron. And still
next day buboes covered the armpit and the groin.
Doctors were important, they went about
in purple gowns and belts of silver thread,
the medieval versions of our saviour,
those who will avert war and lower the price of bread.

And so I take heart from the Middle Ages
as time runs out on us;
as some future, rained off under an acid-drizzle,
will derive solace from us.

Revisit

The same thatch - awnings, the same
rain - blackened harvest lying
in straw-lashed piles. A lone laburnum
drips with yellow like a flare.

Shisham groves, the margosa lining the road,
the forgotten banyan. How can they stay green?
Only wounds have a right to remain green here
in this land where every passion is a spear.
Even love should lose its verdure under this sun.
Everything should wither, blacken, char
or snarl like that babul tree, bristling
with spiked anger, more thorn than leaf.

The same kingfisher in its static flutter
over pools rimmed by hoof-pocked mud.
Melons heaped on the road. Toddy drums
lined in palm-groves waiting for the truck.
A dead buffalo lashed to a cycle-carrier
rattling to its flayed-funeral.
Temples with the mace-bearing Hanuman,
temples, just one hollow spire
from which the god has flown . . .
the bluejay on the wire.

District Law Courts

A briefcase thrown out
of a colliding car;
a hacksaw left
by a fleeing intruder;
a pipe gun, a projectile,
sealed envelopes bigger than
headstones on a grave -
exhibits all.

A table with two drawers missing
from which a cobweb
billows out like a sail.
Dust drapes the ventilators
with its pulverous browns.
The law and the dust here
are exhibits 'A' and 'B'.

Khas blinds enclose the verandahs,
where the voice of the court-crier
splashes names from a water-skin.

A lizard probes the nostrils
of a leaning carbine,
and yet the carbine doesn't sneeze.
A ceiling fan creaks

around its arthritic bolts.
Black jacketed lawyers
and a black-robed judge
munching away at the body of law.

Returning from the Gulf

Like the Arabic script
he had been scrawled westwards, right to left;
had left his pepper trees
and his jackfruit in Mangalore
when the girl he had a crush on
had walked off
with a buck-toothed mechanic.
The fellow had returned from Abu Dhabi
carrying a three-in-one:
a tape-deck, a transistor
and a four inch TV screen
all packaged in two feet of burnished chromé.
He had gone back, bride in tow
to whichever service-station
in the desert that he serviced.

The dust churned up
by his rival's taxi wheels
had hardly settled when he set out himself.
"This is where you belong,"
his mother remonstrated.
"Elsewhere cannot be home.
We will get you a good bride
a girl with well-oiled hair
reaching to her knees
and firm jackfruit breasts."

But he left for Cochin,
paid a labour contractor
half his life's savings
and set off for the Gulf.
Not Abu Dhabi, not on your life.
What if he ran into her once again?
And while the Air India hostess,
who spoke Hindi with a British accent
and English with a Punjabi one,
served him lamb curry and pilao
he let his mind wander
and thought of her
kissing the mechanic's lips
provided of course, they could close
across the serried vanguard of his teeth.

Landing at Kuwait he felt
the hot parchment wind on his face
and the sands firm under his feet
like a stretched bull's hide.
He wondered what those domes
grafted on the middle of columns were doing there
till told they were water towers.
Islamic architecture was in vogue here.

Like the script, he travelled further west
the Hindi *miskeen* looking for better jobs
the names tripping off the tongue
in jewelled cadences:
Ras-a-Qulayah, Hafr-al-Matin.
And the years went by, first hot

and later air-conditioned;
and the letters from home advised
he should invest in gold
and his mother wrote she had two girls in view
one tall and dark, and the other fair
and, you've guessed it, short.
And while he was pondering
over the two photographs one morning
the Assyrian tiger stood at his door
lashing his tail.
A being of distant vision,
he had coveted oil fields
pretty far off from his turf
and had thought up a gun
longer than the Sierra Madre
longer than the Chilean coastline,
with a hundred mile shell
in a thousand mile barrel.

The exodus trails were long and thirsty
till they ran into the ground
on indeterminate borders
like the hiss of a water trickle
veining into the sand.
He was roasted under the sun
till his skin peeled off
and got struck with belts
by Jordanian soldiers
trying to bring order in the camp.
And he carried his welts
instead of wads of notes
into the airbus,

landing at Sahar
into the arms of his mother.
When he drove off from the airport
and the sights and the sounds of the city
accosted him, the car horns insistent
the din in the streets as if scrap metal
was being hammered into shape,
dogs scavenging on the pavements
and people squatting on either
side of the road, right up to Mahim
to answer, as we put it, "the call of nature"
he knew that he was finally
and irrevocably home.

Notes

ektar : A one string musical instrument.

marver : An iron or marble slab, well polished, "upon which glass-blowers roll or shape the plastic glass while still on the blow-pipe."

pontil : "An iron rod used for handling soft glass in the process of formation." (The Shorter Oxford English Dictionary).

turra : A small conical cap worn by Punjabis solely so that the turban can be wound around it.

Nihangs : A Sikh sect living mostly in rural outbacks. Nihangs are attired in blue robes and are often, if not always, armed with spears.

"Akhand rahega Hindustan
Nahin banega Pakistan"

"Hindustan will remain unified
Pakistan will not be formed"

The Poseidonians : As is obvious, the poem takes off from a Cavafy poem of the same name, which runs as under. (Translation by Edmund Keeley and Philip Sherrard)

"The Poseidonians forgot the Greek language
after so many centuries of mingling
with Tyrrhenians, Latins, and other foreigners.
The only thing surviving from their ancestors
was a Greek festival, with beautiful rites,
with lyres and flutes, contests and garlands.
And it was their habit towards the festival's end
to tell each other about their ancient customs
and once again to speak Greek names
that hardly any of them still recognized.
And so their festival always had a melancholy ending
because they remembered that they too were Greeks,
they too were once upon a time citizens of Magna Gracia.
But how the'd fallen now, how they'd changed,
living and speaking like barbarians,
cut off so disastrously from the Hellenic way of life."

falgir : "The *fālgir* makes prophecies by randomly picking a book, usually a volume of poems by Hafez and interpreting the verse he has turned up."

tasgir : "The *tāsgir* tells fortunes by looking at water in a shallow bowl (tas) of about a foot in diameter."

Please see the book *"Isfahan is Half the World"* by Sayyed Mohammad Ali Jamalzadeh.

Hindi Miskeen : the Arab phrase for the "Poor Indian."

Jawaharlal Nehru University
Library